धारा...77 ग्रंथांक...290

आत्मबोध-गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

स्व. श्री कान्तीलाल जी नायक की पुण्य स्मृति में (ध.प. श्रीमती कान्ताबाई पुत्र-पुत्र वधु श्री विरेन्द्र-आशा, श्री पुष्पेन्द्र-मनीषा, श्री अल्पेश-प्रिन्सी, दामाद-पुत्री श्री रजतजी-जीनल, पौत्र-पौत्री सीनल अक्षत, अक्षिता, निखार, चयन, तनीषा एवं समस्त नायक परिवार, मु. लोहारिया (राज.) हाल प्रवास मुम्बई (महा.)

ग्रंथांक-290
प्रतियाँ - 500
संस्करण-प्रथम 2018
मूल्य - 101/-

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

आत्मबोध ही सब से श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-क्लिष्ट

- आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

सब से श्रेष्ठ-सब से ज्येष्ठ-सब से क्लिष्ट है आत्मबोध।
आत्मबोध से सभी बोध-सुबोध, अन्यथा सभी बोध-कुबोध।।
आत्मबोध है स्व-शुद्धात्मा बोध, जो शुद्ध-बुद्ध आनंद है।
अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमय, तन-मन-इन्द्रिय रहित है।।(1)

आत्मबोध हेतु चाहिए आत्मश्रद्धान जो भौतिक श्रद्धान से परे है।
सामाजिक-राजनैतिक व कानूनी से (ले) भौतिक विज्ञान से परे है।।
रूढ़ी-संकीर्ण-पंथ-मत-परम्परा व जाति-राष्ट्र-भाषा से धर्म तक।
परस्पर को अन्धश्रद्धालु मानते स्वयं को ही मानते श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-सम्यक्।।(2)

इन सबसे परे सत्य-समता व उदार-सहिष्णु पावन भाव से।
जो होती है श्रद्धा-प्रज्ञा-अनुभूति उसे ही मान्य आत्मबोध में।।
यह आत्मबोध है राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-मद-मत्सर-शून्य
आकर्षण-विकर्षण द्वन्द रहित, निष्पक्ष-निराकुलता से पूर्ण।।(3)

यह आत्मबोध है इन्द्रिय अगम्य, तथाहि तर्क व यंत्र से परे।
अनुभव गम्य आगम वर्णित तथापि भौतिक ग्रन्थों से परे।।
इतना श्रेष्ठ-इतना ज्येष्ठ-इतना क्लिष्ट कि यह आत्मबोध।
देव-दानव-मानव से चक्रवर्ती-दार्शनिक-वैज्ञानिक में भी दुर्लभ।।(4)

आत्म-बोध हेतु तो राजा-महाराजा-सेठ-साहुकार से चक्रवर्ती।
भौतिक वैभव व भोगोपभोग त्यागकर बन जाते है सर्व सन्यासी।
साधु बनकर आत्म साधना से होते हैं शुद्ध-बुद्ध-आनंद।
यह उपलब्धि ही परम उपलब्धि संसार में अन्यत्र नहीं सम्भव।।(5)

किन्तु अज्ञानी-मोही-स्वार्थी-कामी जीव इसे न जानते व मानते।
इसे तुच्छ व मिथ्या मानकर स्वयं को ही श्रेष्ठ-ज्येष्ठ मानते।।
इसलिए तो ऐसे जीव संसार में अनंत दुःख सहते।

तथापि मद-मस्त जीवों से भी अधिक मोहित होकर श्रेष्ठ मानते।।(6)

सत्ता सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री-भोगोपभोग में ही मस्त/(व्यस्त, संत्रस्त) रहते।
ऐसे जीव आत्मबोध वालों को अज्ञानी-अयोग्य भ्रष्ट मानते।।
तथापि आत्मबोध वाले इन जीवों हेतु आत्मबोध चाहते।
ऐसी महान् उपलब्धि आत्मबोध की, जिसे 'कनक सूरी' सदा चाहते।।(7)

अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय

अपदेसं सपदेसं मुत्तममुत्तं च पज्जयमजादं।
पलयं गयं च जाणदि तं णाणमदिंदियं भणियं।।(43)

That is called supersensuous knowledge witch knows any substance, with or without space-points, with or without form and those modifications which have not come into existence and those which are destryoed.

आगे कहते है कि अतीन्द्रिय रूप केवलज्ञान ही भूत-भविष्य को व सूक्ष्म आदि पदार्थों को जानता है।

जो ज्ञान (अपदेस) बहु प्रदेश-रहित कालाणु व परमाणु आदि को (सपदेसं) बहु-प्रदेशी शुद्ध जीव को आदि ले पाँच अस्तिकायों के स्वरूप को (मुत्त) मूर्तिक पुद्गल द्रव्य को (च अमुत्तं) और अमूर्तिक शुद्ध जीव आदि पाँच द्रव्यों को (आजाद) अभी नहीं उत्पन्न हुई होने वाली (च पलयं गयं) और छूट जाने वाली भूतकाल की (पज्जयं) द्रव्यों की पर्यायों को इस सब ज्ञेय को (अदिंदियं) अतीन्द्रिय (भणियं) कहा गया है।

इस ही से सर्वज्ञ होता है। इस कारण से पूर्व गाथा से कहे हुए इन्द्रिय ज्ञान तथा मानस ज्ञान को छोड़कर जो कोई विकल्प रहित समाधिमयी स्वसंवेदन ज्ञान में सब विभाव परिणामों को त्याग करके प्रीति व लयता करते हैं वे ही परम आनन्द है एक लक्षण जिसका ऐसे सुख स्वभावमयी सर्वज्ञपद को प्राप्त करते है, यह अभिप्राय है।

इस प्रकार अतीत व अनागत पर्यायें वर्तमान ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं होती है। ऐसे बौद्धों के मत को निराकरण करते हुए तीन गाथाएँ कहीं, उसके पीछे इन्द्रिय ज्ञान से सर्वज्ञ नहीं होता है किन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान से होता है ऐसा कहकर नैयायिक मत के

अनुसार चलने वाले शिष्य को समझाने के लिए गाथा दो कही। ऐसे समुदाय के पाँचवें स्थल में पाँच गाथाएँ पूर्ण हुई।

इन्द्रियज्ञान, उपदेश-अन्तःकरण और इन्द्रिय आदि को विरूप कारणपने से (बहिरंगपने) और उपलब्धि (क्षयोपशम) संस्कार आदि को अन्तरंग स्वरूप कारणपने से ग्रहण करके प्रवर्तता है। (इस प्रकार) प्रवर्तता हुआ (वह ज्ञान) (1) सप्रदेशी को ही जानता है क्योंकि वह स्थूल को जानने वाला है, अप्रदेशी को नहीं जानता, क्योंकि वह सूक्ष्म को जानने वाला नहीं है। (2) मूर्तिक को ही जानता है क्योंकि वैसे उसका (मूर्तिक) विषय के साथ सम्बन्ध का सद्भाव है। अमूर्तिक को नहीं जानता, क्योंकि अमूर्तिक विषय के साथ सम्बन्ध का अभाव है। (3) वर्तमान को ही जानता है, क्योंकि वहाँ ही विषय-विषयी के सन्निपात का सद्भाव है। भूत में प्रवर्तित हो चुकने वाले को और भविष्य में प्रवृत्त होने वाले को नहीं जानता, (क्योंकि भूत भविष्य के साथ विषय-विषयी के सन्निकर्ष का अभाव है।)।

जो अनावरण अतीन्द्रियज्ञान है उसके, जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि के अनेक प्रकारता को धारण करने वाला दाह्य (ईन्धन) दाह्यता का उल्लंघन न करने के कारण दाह्य ही है, वैसे (ही) अप्रदेशी, मूर्तिक, अमूर्तिक तथा अनुत्पन्न एवं व्यतीत पर्याय समूह, अपनी ज्ञेयता का उल्लंघन न करने से ज्ञेय ही हैं।

समीक्षा-कुन्दकुन्ददेव ने 40 नम्बर गाथा में परोक्षज्ञान स्वरूप जो इन्द्रिय ज्ञान का वर्णन किया है उससे विपरीत 41 नम्बर गाथा में प्रत्यक्ष ज्ञान स्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञान का वर्णन किया है। इन्द्रिय ज्ञान सम्पूर्ण पदार्थों को और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को नहीं जानता है तो उससे विपरीत वह केवलज्ञान का धारी होते हुए भी केवलज्ञान को बिना प्राप्त किये दीनहीन होकर संसार में परिभ्रमण कर रहा है। ऐसे जीवों के लिए बार-बार प्रबोधन दे रहे हैं कि हे जीव! तुम स्वयं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अखण्ड अक्षय, अनंत ज्ञानानंद जगत् के स्वामी होकर भी दीन हीन होकर सुख एवं ज्ञान के लिए क्यों संसार में यत्र-तत्र भ्रमण कर रहे हो। स्वयं को देखो, स्वयं को पहिचानो जिससे तुम स्वयं के वैभव को प्राप्त कर सकते हो। कहा भी है-

तद्ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्व विद्यामयं व्रजेत्।।(53) स.तं.

आत्म श्रद्धालु को (तत्) वह आध्यात्मिक, चर्चा (ब्रूयात्) करनी चाहिए (तत्) वह आत्मा-सम्बन्धी ही बातें (परान्) अन्य ज्ञानियों से (पृच्छेत्) पूछनी चाहिये (इच्छेत्) उसी आध्यात्मिक विषय की चाह रखनी चाहिए (तत्परःभवेत्) उसी आध्यात्मिक विषय में सदा तत्पर-तैयार या उत्सुक रहना चाहिए, (येन) जिसमें (अविद्यामयं रूपं) अपना आत्मा का अज्ञान भाव (त्यक्त्वा) छोड़कर (विद्यालय) ज्ञानभाव (व्रजेत्) प्राप्त हो।

क्षायिक ज्ञान ही केवलज्ञान

जं तक्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंतदो सव्वं।
अत्थं विचित्तविसमं तं णाणं खाइगं भणियं।। (47)

That knowledge is called Ksayika (i.e. produced after the destruction of Karmas) which knows completely and simultaneously the whole range of veriegated and unequal objectivity of the present and otherwise.

आगे कहते हैं कि केवलज्ञान ही सर्वज्ञ का स्वरूप है। आगे कहेंगे कि सर्वज्ञ को जानते हुए एक का ज्ञान होता है तथा एक को जानते हुए सर्व का ज्ञान होता है। इस तरह पाँच गाथाओं तक व्याख्यान करते हैं। उनमें से प्रथम ही निरूपण करते हैं क्योंकि यहाँ ज्ञान प्रपंच के व्याख्यान की मुख्यता है, इसलिये उसी ही को आगे लेकर फिर कहते हैं कि केवलज्ञान सर्वज्ञ रूप है।

(जं) जो ज्ञान (समंतदो) सर्व प्रकार से आत्मा के प्रदेशों से (विचित्तं विसमं) नाना भेदरूप जाति के मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन, आदि (सव्वं अत्थं) सर्व पदार्थों को (तक्कालिग) वर्तमान काल सम्बन्धी तथा (इतरं) भूत, भविष्यत् काल सम्बन्धी पर्यायों सहित (जुगवं) एक समय में व एक साथ (जाणदि) जानता है। (तं णाणं) उस ज्ञान को (खाइयं) क्षायिक (भणियं) कहा है। अभेद नय से वही सर्वज्ञ का स्वरूप है इसलिये वही ग्रहण करने योग्य अनन्त सुख आदि अनन्त गुणों का आधारभूत सब तरह से प्राप्त करने योग्य है, इस रूप से भावनी करनी चाहिए। यह तात्पर्य हैं।

(1) वर्तमान काल में वर्तते, (2) भूत-भविष्यत् काल में वर्तते, (3)

जिनमें पृथक् रूप से वर्तते स्वलक्षण रूप लक्ष्मी से आलोकित अनेक प्रकारों के कारण वैचित्र्य प्रकट हुआ है, (4) और जिनमें परस्पर विरोध से उत्पन्न होने वाली असमान-जातीयता के कारण वैषम्य प्रगट हुआ है, ऐसे (चार विशेषण वाले) समस्त पदार्थ समूह को, एक समय में ही (युगपत्), सर्वतः (सर्व आत्म प्रदेशों से) क्षायिक ज्ञान वास्तव में जानता है। इसी बात को युक्तिपूर्वक स्पष्ट समझाते हैंः- (1) उस (केवल ज्ञान) के वास्तव में क्रम-प्रवृत्ति के हेतुभूत क्षयोपशम अवस्था में रहने वाले ज्ञानावरणीय कर्म-पुद्गलों का अत्यन्त अभाव होने से (वह क्षायिक ज्ञान) तात्कालिक या अतात्कालिक पदार्थ समूह को समकाल में (युगपत्) ही प्रकाशित करता है। (2) सर्वतः (सर्व प्रदेशों से) विशुद्ध (उस क्षायिक ज्ञान) के प्रतिनियत प्रदेशों की विशुद्धि (सर्वतः विशुद्धि) के भीतर डूब जाने से, (वह क्षायिक ज्ञान) सर्वतः (सर्व आत्म-प्रदेशों से) ही प्रकाशित करता है (4) सर्व प्रकार ज्ञानावरणीय के क्षय से, असर्व प्रकार के ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम के नाश होने से (वह क्षायिक ज्ञान) विचित्र को (अनेक प्रकार के पदार्थों को) भी प्रकाशित करता है। (5) असमान जातीय ज्ञानावरण के क्षय से समान जातीय ज्ञानावरण के क्षयोपशम के नष्ट हो जाने से, (वह क्षायिक ज्ञान) विषय को भी (असमान जाति के पदार्थों को भी) प्रकाशित करता है।

सार- अथवा, अतिविस्तार से बस हो जिसका अनिवारित (रूकावट रहित फैलाव है) ऐसे प्रकाश स्वभावी होने से, क्षायिक ज्ञान अवश्य ही सर्वदा (सब कालीन त्रिकालीन), सर्वत्र (सब क्षेत्र के लोक अलोक के) सब पदार्थ को सर्वथा (सम्पूर्ण रूप से) जाने अर्थात् जानता है।

समीक्षा- इस गाथा में कुंदकुंददेव ने यह सिद्ध किया है कि जो ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है वही केवलज्ञान है और जो ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है वह केवलज्ञान नहीं हो सकता है। क्योंकि क्षयोपशम में अभी भी कुछ ज्ञान को रोकने वाले कर्म की सत्ता विद्यमान है परन्तु क्षायिक ज्ञान को रोकने वाले कर्म का सर्वथा अभाव है। वीरसेन स्वामी ने धवला में कहा भी है-

संपुण्णं तु समग्गं केवलमवसत्त-सव्व-भाव विदं।

लोगालोग-वितिमिरं केवलणाणं मुणेयव्वं।। (186) पृ. 360 पु.1

जो जीवद्रव्य के शक्तिगत सर्वज्ञान के अविभाग-प्रतिच्छेदों के व्यक्त हो जाने के कारण संपूर्ण है, ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के सर्वथा नाश हो जाने के कारण जो अप्रतिहत शक्ति है, इसलिए समग्र है, जो इन्द्रिय और मन की सहायता से रहित होने के कारण केवल है, जो प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मों के नाश हो जाने से अनुक्रम रहित संपूर्ण पदार्थों में प्रवृत्ति करता है इसलिए असपत्न है और जो लोक और अलोक में अज्ञान रूपी अंधकार से रहित होकर प्रकाशमान हो रहा है उसे केवलज्ञान जानना चाहिए।

राजवार्त्तिक में अकलंक देव स्वामी ने केवलज्ञान के बारे में कहा है-

सर्वग्रहणं निरवशेषप्रतिपत्त्यर्थं। (9)

निरवशेष का ज्ञान कराने के लिये सर्वशब्द को ग्रहण किया है। लोक-अलोक में त्रिकालविषयक जितने भी अनंतानंत द्रव्य और पर्यायें हैं उन सब में केवलज्ञान के विषय का निबन्ध है अर्थात् उन सबको केवलज्ञान जानता है। जितने भी अनंतानंत लोक-अलोक द्रव्य है इससे भी अनंतगुणे लोक और अलोक और भी होते तो भी केवलज्ञान जान सकता है। क्योंकि केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है, ऐसा जानना चाहिए।

जो सब को नहीं जानता है वह एक को भी नहीं जानता

जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तिक्कालिगे तिहुवणत्थे।
णादुं तस्स ण सक्कं सपज्जयं दव्वमेगं वा।। (48)

He, who does not know simultaneousely the objects of the three tenses and in the three worlds, cannot know even a single substance with its (infinite) Modifications.

आगे आचार्य विचारते हैं कि जो ज्ञान सबको नहीं जानता वह ज्ञान एक पदार्थ को भी नहीं जान सकता है। (जो) जो कोई आत्मा (जुगवं) एक समय में (तिक्कालिगे) तीन काल की पर्यायों में परिणमन करने वाले (तिहुवणत्थे) तीन लोक में रहने वाले (अत्थे) पदार्थों को (ण विजाणदि) नहीं जानता है (तस्स) उस आत्मा का ज्ञान (सपज्जयं) अनन्त पर्याय सहित (एकं दव्वं) एक द्रव्य को (वां) भी (णादुं) जानने के लिए (ण सक्कं) नहीं समर्थ होता है।

भाव यह है कि आकाश द्रव्य एक है, धर्म द्रव्य एक है, तथा अधर्म द्रव्य एक है और लोकाकाश के प्रदेशों के प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य हैं, क्योंकि एक-एक जीवद्रव्य में अनन्त कर्म वर्गणाओं का सम्बन्ध है तैसे ही अनन्त नोकर्मवर्गणाओं का सम्बन्ध है। तैसे ही इन सब द्रव्यों में प्रत्येक द्रव्य की अनन्त पर्यायें होती हैं क्योंकि काल के समय पुद्गल द्रव्य से भी अनन्तानन्त गुणे हैं। यह सब ज्ञेय-जानने योग्य हैं और इनमें एक कोई भी विशेष जीवद्रव्य ज्ञाता जानने वाला है। ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यहाँ जैसे अग्नि सब जलाने योग्य ईंधन को जलाती हुई सब जलाने योग्य कारण के होते हुए सब ईंधन पर्याय में परिणमन करते हुए सर्वमयी एक अग्निस्वरूप हो जाती है अर्थात् वह अग्नि उष्णता में परिणत तृण व पत्तों आदि के आकार अपने स्वभाव को परिणमाती है। तैसे यह आत्मा सर्व ज्ञेयों को जानता हुआ सर्व ज्ञेयों रूप कारण के होते हुए सर्व ज्ञेयाकार की पर्याय में परिणमन करते हुए सर्वमयी एक अखंडज्ञान रूप अपने ही आत्मा को परिणमता है अर्थात् सबको जानता है और जैसे वही अग्नि पूर्व में कहे हुए ईंधन को नहीं जलाती हुई उस ईंधन के आकार रूप नहीं परिणमन होती है तैसे ही आत्मा भी पूर्व में कहे हुए सर्वज्ञेयों को न जानता हुआ पूर्व में कहे हुए लक्षण रूप सर्व को जानकर एक अखंड ज्ञानाकार रूप अपने ही आत्मा को नहीं परिणमाता है अर्थात् सर्व का ज्ञाता नहीं होता। दूसरी भी एक उदाहरण देते है। जैसे कोई अन्ध पुरुष सूर्य से प्रकाशने योग्य पदार्थों को नहीं देखता, दीपक से प्रकाशने योग्य पदार्थों को न देखता हुआ दीपक को भी नहीं देखता, दर्पण में झलकती हुई परछाई को न देखते हुए दर्पण को भी नहीं देखता, अपनी ही दृष्टि से प्रकाशने योग्य पदार्थों न देखता हुआ हाथ, पैर आदि अंग रूप अपने ही देह के आकार को अर्थात् अपने को अपनी दृष्टि से नहीं देखता है। तैसे इस प्रकरण में प्राप्त कोई आत्मा भी केवलज्ञान से प्रकाशने योग्य पदार्थों को नहीं जानता हुआ सकल अखंड एक केवल ज्ञान रूप अपने आत्मा को नहीं जानता है। इससे यह सिद्ध होता कि जो सबको नहीं जानता है वह अपने आत्मा को भी नहीं जानता है।

समीक्षा-सामान्यतः वस्तु स्वरूप को जानने की प्रणाली एवं प्रतिपादन की प्रणाली विधिपरक (अस्तिपरक) एवं निषेधपरक (नास्तिकारक) होती है। क्योंकि

द्रव्य स्वचतुष्टय (स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) से अस्तिरूप एवं परचतुष्टय (परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) से नास्तिरूप है। जिस प्रकार विज्ञान की प्रयोगशाला में कुछ मिले हुए तत्त्व को पृथक्-पृथक् करने के लिए मिले हुए संपूर्ण तत्त्वों का परिज्ञान चाहिए। उसके बिना तत्त्व विश्लेषण नहीं हो सकता है। इसी प्रकार आत्मस्वरूप को एवं परस्वरूप को जानने के लिए एवं पृथक्करण करने के लिये भी स्वज्ञान के साथ-साथ पर का भी ज्ञान आवश्यक है। इष्टोपदेश में पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

जीवोऽन्यःपुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।

यदन्यदुच्यते किंचित् सोऽस्तु तत्स्यैव विस्तरः।।(50) (पृ. 216)

जीव शरीरादिक पुद्गल से भिन्न हैं और पुद्गल जीव से भिन्न हैं यही तत्त्व का संग्रह है और इसके अतिरिक्त जो कुछ भी कहा जाता है वह सब इस ही का विस्तार है।

इस गाथा में आचार्य श्री ने यह सिद्ध किया है कि जो ज्ञान संपूर्ण त्रिकालवर्ती ज्ञेय को नहीं जानता है वह एक द्रव्य या स्वद्रव्य को भी नहीं जान सकता है। क्योंकि एक द्रव्य में भी अनन्त गुण एवं पर्यायें होती हैं उन अनंत गुण एवम् पर्यायों को जानने के लिये अनंत ज्ञान चाहिए। क्योंकि 'णाणं णेथ पमाणं मुद्दिट्ठं' अर्थात् ज्ञान ज्ञेय के बराबर होता है। यदि ज्ञेय अनंत हैं तो उसको जानने वाला ज्ञान भी होना चाहिए अन्यथा छोटा ज्ञान बड़े ज्ञेय को नहीं जान सकता हैं। इसलिए यहाँ पर कहा गया है कि जो केवलज्ञान अनन्तगुण पर्यायात्मक त्रिकालवर्ती समस्त ज्ञेयों को जानता है वही ज्ञान अनन्त गुण पर्यायात्मक एक द्रव्य को या स्वआत्म द्रव्य को जान सकता है यह ज्ञान एवं ज्ञेय सम्बन्ध है। जिस प्रकार दस लीटर पानी को एक ही बार में मापने के लिए कम से कम 10 लीटर वाला मापक चाहिये और यदि मापक उससे छोटा है तो जल एक बार में मापा नहीं जा सकता । इसलिए सर्वज्ञ सर्व ज्ञेयों को जानते हैं और एक ज्ञेय को भी जानते हैं।

(जो एक को जानता वह सब को जानता)
(स्वात्मा का पूर्णज्ञाता होता है विश्वज्ञाता)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल....कसमे वादे....)

तू ही तेरा ज्ञान-ज्ञेय है, अन्य सब तेरा ज्ञेय है।
तू ही तेरा द्रव्य व सत्य, गुण-पर्याय व धर्म/तीर्थ है।।(स्थायी)
तेरे अन्दर अनन्त गुण, पर्याय भी होती अनन्त हैं।
तू ही तुझे जानने हेतु, चाहिए ज्ञान अनन्त है।।(1)

अनन्त ज्ञानी बनने हेतु, चाहिये घाती नाश है।
जिससे बनोगे सर्वज्ञ तू, स्व-पर-विश्व ज्ञायक है।।(2)

अतः तू जानो स्वयं को, विश्व बनेगा ज्ञेय है।
इसलिए तुझे करना होगा, राग-द्वेष-मोह-क्षय है।।(3)

स्व-पर-भेद-विज्ञान हेतु, करो है स्व-पर ज्ञान है।
चेतन-अचेतन व मिश्र, हान-उपादान (ग्राह्य-अग्राह्य) अपेक्षा है।।(4)

द्रव्य-तत्त्व व पदार्थों को, जानना होगा सम्यक् है।
सम्यक्-श्रद्धान सहित भी, आचरणीय सम्यक् है।।(5)

इसलिये श्रुतज्ञान का तुझे, करना होगा स्वाध्याय है।
ख्याति-पूजा-लाभ रहित, करना होगा स्व-अध्ययन है।।(6)

भोग-कांक्षा-निदान-रहित, विनय-विशुद्धि-संयुक्त है।
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी' भी, स्वाध्याय में दत्तचित्त है।।(7)

उदयपुर हिरणमगरी सेक्टर-11, दि. 18.10.2014 मध्याह्न-3.03 बजे

जो एक को नहीं जानता है सबको नहीं जानता

दव्वं अणंतपज्जयमेगमणंताणि दव्वंजादाणि।

ण विजाणदि जदि जुगवं किध सो सव्वाणि जाणादि।। (49)

A single substance has Infinite modes and Infinite are the classes of substances, if he does not know (them) simultaneously, how will he be able to know all of them?

आगे निश्चय करते हैं कि जो एक को नहीं जानता वह सबको भी नहीं जानता है।

(जदि) यदि कोई आत्मा (एगं अणंतपज्जयं दव्वं) एक अनन्त पर्यायों के रखने वाले द्रव्य को (ण विजाणदि) निश्चय से नहीं जानता है (सो) वह आत्मा (कधं) किस तरह (सव्वाणि अणंताणि दव्वजादाणि) सर्व अनन्तद्रव्य समूहों को (जुगवं) एक समय में (जाणादि) जान सकता है? अर्थात् किसी तरह भी नहीं जान सकता। विशेष यह है कि आत्मा का लक्षण ज्ञान स्वरूप है। सो अखंड रूप से प्रकाश करने वाला सर्व जीवों में साधारण महासामान्य रूप है। वह महासामान्य ज्ञान अपने ज्ञानमयी अनन्त विशेषों में व्यापक है, वे ज्ञान के विशेष अपने विषय रूप ज्ञेय पदार्थ जो अनन्त द्रव्य और पर्याय हैं उनको जानने वाले, ग्रहण करने वाले है जो कोई अपने आत्मा को अखंड रूप से प्रकाश करते हुए महासामान्य स्वभाव रूप प्रत्यक्ष नहीं जानता है वह पुरुष प्रकाशमान महासामान्य के द्वारा जो अनन्तज्ञान के विशेष व्याप्त हैं उनके विषय रूप जो अनन्त द्रव्य और पर्याय हैं उनको कैसे जान सकता है? अर्थात् किसी भी तरह नहीं जान सकता। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो अपने आत्मा को नहीं जानता हैं वह सर्व को नहीं जानता है। ऐसा कहा भी है-

एको भावः सर्व-भाव-स्वभावः सर्वे भावा एक-भाव-स्वभावाः।

एको भावस्तत्त्वो येन बुद्धः सर्वे भावास्तत्त्वतस्तेन बुद्धाः।।

भाव यह है कि एक-भाव सर्व भावों का स्वभाव है और सर्व-भाव एक-भाव के स्वभाव है। जिसने निश्चय से यथार्थ रूप से एक भाव को जाना उसने यथार्थ रूप से सर्वभावों को जाना है। यहाँ ज्ञाता और ज्ञेय सम्बन्ध लेना चाहिए, जिसने ज्ञाता को जाना उसने सब ज्ञेयों को जाना ही है।

यहाँ पर शिष्य ने प्रश्न किया कि आपने यहाँ यह व्याख्या की कि आत्मा को

जानते हुए सर्व का ज्ञानपना होता है और इसके पहले सूत्र में कहा था कि सब ज्ञान से आत्मा का ज्ञान होता है। यदि ऐसा है तो छद्मस्थों को सर्व का ज्ञान नहीं हैं, तब उनको आत्मा का ज्ञान कैसे होगा? यदि उनको आत्मा का ज्ञान न होगा तो उनके आत्मा की भावना कैसे होगी? यदि आत्मा की भावना न होगी तो उनको केवल ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होगी? इस शंका का समाधान करते हैं कि परोक्ष प्रमाण रूप श्रुतज्ञान से सर्व पदार्थ जाने जाते है। यह कैसे? सो कहते हैं कि छद्मस्थों को भी लोक और अलोक का ज्ञान व्याप्ति ज्ञानरूप से है। वह व्याप्ति ज्ञान परोक्ष रूप से केवलज्ञान के विषय को ग्रहण करने वाला है इसलिए किसी अपेक्षा से आत्मा ही कहा जाता है। अथवा स्वसंवेदनज्ञान से आत्मा को जानते हैं, और फिर उसी की भावना करते है। इसी रागद्वेषादि विकल्पों से रहित स्वसंवेदन ज्ञान की भावना के द्वारा केवलज्ञान पैदा हो जाता है। इसमें कोई दोष नहीं है।

समीक्षा- आचार्य श्री ने 48 नम्बर गाथा में यह सिद्ध किया था कि जो सबको नहीं जानता वह एक को भी नहीं जानता परन्तु इस गाथा में यह सिद्ध किया है कि जो एक को नहीं जानता है वह सबको भी नहीं जानता है। इसका कारण भी वही है जो पूर्वोक्त 48 नम्बर गाथा में कहा गया है। परमात्म प्रकाश में योगेन्द्र देव ने कहा है कि हे! योगी तुम आत्मा को जानो जिससे तुम सम्पूर्ण विश्व को जान सकते हो क्योंकि अनन्त ज्ञान अनुभाग प्रतिच्छेद से युक्त आत्मा में सम्पूर्ण विश्व हस्तामलकवत प्रतिभासित होता है। यथा-

जोइय अप्पें जाणिएण जगु जाणियउ हवेइ।
अप्पहँ केरइ भावडइ बिंबिउ जेण वसेइ।।99।। (परमात्म प्र.)

हे योगी! एक अपने आत्मा को जानने से यह तीन लोक जाना है क्योंकि आत्मा के भावरूप केवल ज्ञान में यह लोक प्रतिबिंबित हुआ, बस रहा है।

वसति भुवि समस्तं सापि संधारितान्यैः
उदरमुपनिविष्टा सा च ते वा परस्य।
तदपि किल परेषां ज्ञानकोणे विलीनं
वहति कथमिहान्यो गर्वमात्माधिकेषु ।।(219) आत्मानुशासन

जिस पृथ्वी के ऊपर सब ही पदार्थ रहते हैं वह पृथ्वी भी दूसरों के द्वारा घनोदधि, घन और तनु वातवलयों के द्वारा-धारण की गई है। वह पृथ्वी और वे तीनों ही वातवलय भी आकाश के मध्य में प्रविष्ट हैं, और वह आकाश भी केवलियों के ज्ञान के एक कोने में विलीन है। ऐसी अवस्था में यहाँ दूसरा अपने से अधिक गुणवालों के विषय में कैसे गर्व धारण करता है?

क्रम प्रवृत्त ज्ञान केवलज्ञान नहीं-

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अट्ठे पडुच्च णाणिस्स।
तं णेव हवदि णिच्चं ण खाइगं णेव सव्वगदं।।(50)

If the knower, after coming into contect with the objectivity, produces knowledge step by step; that knowledge cannot be eternal, neither can it be KSAYIKA, nor all-pervasive.

आगे कहते हैं कि जो ज्ञान क्रम से पदार्थों के जानने में प्रवृत्ति करता है उस ज्ञान से कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता है अर्थात् क्रम से जानने वाले को सर्वज्ञ नहीं कह सकते।

(जदि) यदि (णाणिस्स) ज्ञानी आत्मा का (णाणं) ज्ञान (अट्ठे) जानने योग्य पदार्थों को (पडुच्च) आश्रय करके (कमसो) क्रम से (उप्पज्जदि) पैदा होता है। तो (तं) वह ज्ञान (णिच्चं) अविनाशी (णेव) नहीं (हवादि) होता है अर्थात् जिस पदार्थ के निमित्त से ज्ञान उत्पन्न हुआ है उस पदार्थ के नाश होने पर उस पदार्थ का ज्ञान भी नाश होता है इसलिए वह ज्ञान सदा नहीं रहता है, इससे नित्य नहीं है। (णं खाइयं) न क्षायिक है क्योंकि वह परोक्ष ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के अधीन है। (णेव सव्वगयं) और न वह सर्वगत है, क्योंकि जब वह पराधीन होने से नित्य नहीं है, क्षयोपशम के अधीन होने से क्षायिक नहीं है, इसीलिए ही वह ज्ञान एक ज्ञान एक समय में सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों को जानने के लिये असमर्थ है इसलिये सर्वगत नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो ज्ञान क्रम से पदार्थों का आश्रय लेकर पैदा होता है उस ज्ञान को रखने से सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

समीक्षा-जो ज्ञान कर्माधीन अर्थात् कर्मों के क्षयोपशम से जायमान है वह ज्ञान पूर्ण स्वतंत्र क्षायिक एवं अनंत नहीं होने के कारण कुछ द्रव्यों को, कुछ क्षेत्र को, कुछ

निश्चित पर्यायों को ही जानता है। और इसके विपरीत जो ज्ञान पूर्ण निरावरण क्षायिक है वह पूर्ण स्वतंत्र, अव्याबाध, अनंत एवं अक्रम प्रभृति वाला होता है। जो केवलज्ञान को भी क्रमप्राभृत मानते है उसका खण्डन कलिकाल सर्वज्ञ वीरसेन स्वामी ने जयधवला में सविस्तार निम्न प्रकार से किया है-

तीर्थङ्कर की आसादना से डरने वाले कुछ आचार्य 'जं' समयं जाणति नो त समयं पासति जं समयं पासति नो तं समयं जाणति इस प्रकार के सूत्र का अवलम्बन लेकर कहते हैं कि जिन भगवान् जिस समय जानते हैं उस समय देखते नहीं है (134 पृ. 320)

320 समाधान-अब उक्त शंका का समाधान करते हैं-केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण का क्षय एक साथ होता है या क्रम से होता है? इन दोनों कर्मों का क्षय क्रम से होता है ऐसा तो कहा नहीं जा सकता है, क्योंकि ऐसा कहने पर उक्त कथन का 'क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय ये तीनों घातिया कर्म एक साथ नाश को प्राप्त हुए। इस सूत्र के साथ विरोध आता है। इस प्रकार दोनों आवरणों का एक साथ नाश होने पर केवलज्ञान के साथ केवलदर्शन भी उत्पन्न होना चाहिए क्योंकि केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति के सभी अविकल कारणों के साथ मिल जाने पर उनकी क्रम से उत्पत्ति मानने में विरोध आता है। यहाँ उपर्युक्त गाथा से वह सिद्ध होता है कि केवल ज्ञानावरण के क्षय हो जाने पर जिस प्रकार केवलज्ञान उत्पन्न होता है। उसी प्रकार केवल दर्शनावरण कर्म के क्षय हो जाने पर केवलदर्शन की उत्पत्ति भी बन जाती है।

चूँकि केवलज्ञान और केवलदर्शन एक साथ उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनकी प्रवृत्ति क्रम से नहीं बन सकती है।

321. शंका-केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति एक साथ रही आओ, क्योंकि उनके आवरणों का विनाश एक साथ होता है। किन्तु केवलज्ञानोपयोग और केवलदर्शनोपयोग क्रम से ही होते हैं, क्योंकि केवलदर्शन सामान्य को विषय करने वाला होने से अव्यक्त रूप है और केवलज्ञान सामान्य को विषय करने वाला होने से अव्यक्त रूप है और केवलज्ञान विशेष को विषय करने वाला होने से व्यक्त रूप है,

इसलिये उनकी एक साथ प्रवृत्ति मानने में विरोध आता है। यहाँ इस विषय में उपर्युक्त गाथा देते है-

दर्शनावरण और ज्ञानावरण का क्षय एक साथ होने पर पहले केवलदर्शन उत्पन्न होता है या केवलज्ञान? ऐसा पूछे जाने पर यही कहना होगा कि दोनों उत्पत्ति एक साथ होगी, पर इतना निश्चित है कि केवलज्ञानापयोग और केवलदर्शनोपयोग ये दो उपयोग नहीं है। (137) स.सू.अ. 2 गा. 5

322 समाधान-यदि केवलज्ञान विशेष को ही विषय करता और केवलदर्शन सामान्य को ही विषय करता तो वह दोष संभव होता, पर ऐसा नहीं है, क्योंकि केवल सामान्य और विशेष रूप विषय का अभाव होने से दोनों के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। इसका खुलासा इस प्रकार है-केवल सामान्य तो है नहीं, क्योंकि अपने विशेषों को छोड़कर केवल तद्भाव सामान्य और सादृश्य लक्षण सामान्य नहीं पाये जाते हैं। यदि कहा जाय कि सामान्य के बिना सर्वत्र समान प्रत्यय और एक प्रत्यय की उत्पत्ति बन नहीं सकती है, इसलिये सामान्य नाम का स्वतंत्र पदार्थ है, सो ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि एक का ग्रहण अनेकानुविद्ध होता है और समान का ग्रहण असमानानुविद्ध होता है, अतः सामान्य-विशेषात्मक वस्तु को विषय करने वाले जात्यन्तरभूत ज्ञानों की ही उत्पत्ति देखी जाती है। इससे प्रतीत होता है कि सामान्य नाम का कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। तथा सामान्य से सर्वथा भिन्न विशेष नाम का भी कोई पदार्थ नहीं है, क्योंकि सामान्य से अनुविद्ध होकर ही विशेष की उपलब्धि होती है।

यदि कहा जाय कि सामान्य और विशेष स्वतंत्र पदार्थ होते हुए भी उनके संयोग का परिज्ञान एक ज्ञान के द्वारा पाया जाता है, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सर्वथा स्वतंत्ररूप से न तो सामान्य ही पाया जाता है और न विशेष ही पाया जाता है, अतः उनका संयोग नहीं हो सकता है। यदि सामान्य और विशेष का सर्वथा स्वतंत्र सद्भाव मान लिया जाय तो समस्त ज्ञान या तो संकररूप हो जायेंगे या आलम्बन रहित हो जायेंगे। पर ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा होने पर उनका ग्रहण ही नहीं हो सकता है।

वे पूर्वोक्त दोष प्राप्त नहीं हो, इसलिये अन्तरंग उद्योत केवलदर्शन है और बहिरंग पदार्थों को विषय करने वाला प्रकाश केवलज्ञान है, ऐसा स्वीकार कर लेना

चाहिए। दोनों उपयोगों की एक साथ प्रवृत्ति मानने में विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि उपयोगों की क्रमवृत्ति कर्म का कार्य है और कर्म का अभाव हो जाने से उपयोगों को क्रमवृत्ति का भी अभाव हो जाता है, इसलिये निरावरण केवलज्ञान और केवलदर्शन की क्रमवृत्ति के मानने में विरोध आता है।

शंका-आगम में कहा है कि अवधिदर्शन परमाणु से लेकर अंतिम स्कन्धपर्यन्त मूर्तिक द्रव्यों को देखता है इसमें दर्शन का विषय बाह्य पदार्थ बतलाया है, अतः अंतरंग पदार्थ को विषय करता है यह कहना ठीक नहीं है?

समाधान-ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि 'परमाणु आदियाइ' इत्यादि गाथा में विषय के निर्देश द्वारा विषयी का निर्देश किया है, क्योंकि अंतरंग विषय का निरूपण अन्य प्रकार से किया नहीं जा सकता है, अर्थात् अवधिज्ञान का विषय मूर्त्तिक पदार्थ है, अतः अवधि दर्शन के विषयभूत अंतरंग पदार्थ को बतलाने का अन्य कोई प्रकार न होने का कारण मूर्तिक पदार्थ का अवलम्बन लेकर उसका निर्देश किया है।

325 शंका-चूँकि केवलज्ञान स्व और पर दोनों का प्रकाशक है। इसलिये केवलदर्शन नहीं है ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं। इस विषय की उपयुक्त गाथा देते हैं-

मनःपर्ययज्ञान पर्यन्त ज्ञान और दर्शन इन दोनों में विशेष अर्थात् भेद है। परन्तु केवल ज्ञान की अपेक्षा से तो ज्ञान और दर्शन दोनों समान हैं। **(स.सू.अ.2स.3)**

326 समाधान– परन्तु उनका कहना भी ऐसा नहीं बनता है। क्योंकि केवलज्ञान स्वयं पर्याय है, इसलिये उसकी दूसरी पर्याय नहीं हो सकती। अर्थात् यदि केवलज्ञान को स्व पर प्रकाशक माना जायेगा तो उसकी एक काल में स्वप्रकाश रूप और पर प्रकाश रूप दो पर्यायें माननी पड़ेगी। किन्तु केवलज्ञान स्वयं पर प्रकाश रूप एक पर्याय है, अतः उसकी स्व प्रकाश रूप दूसरी पर्याय नहीं हो सकती है। पर्याय की पर्यायें होती हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर एक तो पहली पर्याय की दूसरी पर्याय, उसकी तीसरी पर्याय इस प्रकार उत्तरोत्तर पर्याय सन्तति प्राप्त होती है, इसलिये अनवस्था दोष आता है। दूसरे, पर्याय की पर्याय मानने से पर्याय द्रव्य हो जाता है, इसलिए उसमें पर्यायत्व का अभाव प्राप्त होता है। इस प्रकार पर्याय की

पर्याय मानकर भी केवलदर्शन केवलज्ञान रूप नहीं हो सकता है। तथा केवलज्ञान स्वयं न तो जानता ही है और न देखता ही है, क्योंकि वह स्वयं जानने और देखने रूप क्रिया का कर्त्ता नहीं है, इसलिए ज्ञान को अंतरंग और बहिरंग दोनों का प्रकाशक न मानकर जीव स्व और पर का प्रकाशक है ऐसा मानना चाहिए।

केवलज्ञान और केवलदर्शन यह दोनों प्रकार एक ही हैं ऐसा भी नहीं कहना चाहिए, क्योंकि बाह्य पदार्थ को विषय करने वाले साकार उपयोग और अंतरंग पदार्थ को विषय करने वाले अनाकार उपयोग को एक मानने में विरोध आता है।

327 शंका-केवलज्ञान के केवलदर्शन अभिन्न है, इसलिए केवल दर्शन केवलज्ञान क्यों नहीं हो जाता है?

यदि कहा जाय कि केवलदर्शन अव्यक्त हैं, इसलिए केवलज्ञान केवलदर्शन रूप नहीं हो सकता है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जो आवरण से रहित है और जो सामान्यः विशेषात्मक अंतरंग पदार्थ के अवलोकन में लगा हुआ है ऐसे केवलदर्शन को अव्यक्तरूप स्वीकार करने में विरोध आता है यदि कहा जाय कि केवलदर्शन का भी व्यक्त रूप स्वीकार करने से केवलज्ञान और केवलदर्शन इन दोनों की समानता अर्थात् अनेकता नष्ट हो जायेगी सो भी बात नहीं है, क्योंकि परस्पर के भेद से इन दोनों में भेद हैं, इसलिए इसमें असमानता अर्थात् एकता के मानने में विरोध आता है। दूसरे यदि दर्शन का सद्भाव न माना जाय तो दर्शनावरण के लिए सात ही कर्म होंगे, क्योंकि आवरण करने योग्य दर्शन के अभाव मानने पर उसके आवरण का सद्भाव मानने में विरोध आता है।

जुगवं वट्टइ णाणं, केवलणाणिस्स दंसणं च तहा।
दिणयरपयासतापं जह वट्टइ तह मुणेयव्वं।। (60)

जैसे सूर्य के प्रकाश और ताप युगपत् रहते हैं वैसे ही जानना चाहिए।

णाणं परप्पयासं, दिट्ठी अप्पप्पयासया चेव।
अप्पा सपरपयासो, होदि त्ति हि मण्णसे जदि हि।। (161)

ज्ञान पर प्रकाशी है और दर्शन आत्मप्रकाशी है तथा आत्मा स्व और पर प्रकाशक होता है, यदि तुम ऐसा ही निश्चित मानते हो तो ठीक नहीं है।

णाणं परप्पयासं तइया णाणेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगयं, दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।। (162)

ज्ञान परप्रकाशी है तब तो ज्ञान से दर्शन भिन्न हुआ क्योंकि दर्शन परद्रव्यगत परद्रव्यों का प्रकाशक नहीं होता है ऐसा पूर्व में वर्णन किया है।

अप्पा परप्पयासो तइया अप्पेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगयं दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।। (163)

यदि आत्मा पर प्रकाशी है तब तो आत्मा से दर्शन भिन्न हो जावेगा क्योंकि दर्शन परद्रव्यगत नहीं है। ऐसा पूर्व सूत्र में वर्णन किया गया है।

णाणं परप्पयासं, ववहारणयेण दंसणं तम्हा।
अप्पा परप्पयासो, ववहारणयेण दंसण तम्हा। (164)

व्यवहार नय से ज्ञान पर प्रकाशी है इसलिए दर्शन भी पर प्रकाशी है, व्यवहारनय से आत्मा पर प्रकाशी है अतः दर्शन भी पर प्रकाशी है।

णाणं अप्पयासं, णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा।
अप्पा अप्पयासो, णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा।। (165)

निश्चय से ज्ञान आत्म प्रकाशी है, दर्शन भी उसी प्रकार आत्म प्रकाशी है। निश्चय में आत्मा प्रकाशी है, दर्शन भी वैसा ही है।

अप्पसरूवं पेच्छदि, लोयालोयं ण केवली भगवं।
जइ कोइ भणइ एवं, तस्स य किं दूसणं होइ।। (166)

केवली भगवान् आत्मा के स्वरूप को देखते हैं किन्तु लोकालोक को नहीं, ऐसा यदि कोई भी कहता है तो उसके लिए क्या दूषण है?

मुत्तममुत्तम् दव्वं, चयणमियरं सगं च सव्वं च।
पेच्छंतस्स दु णाणं, पच्चक्खमणिदियं होइ।।

मूर्तिक, अमूर्तिक, चेतन और अचेतन द्रव्यों को अपने को तथा समस्त को देखने वाले का ज्ञान अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष होता है।

पुव्वुत्तसयलदव्वं णाणागुणपज्जएण संजुत्तं।
जो णय पेच्छइ सम्मं, परोक्खदिट्ठी हवे तस्स।। (168)

नाना गुण पर्यायों से संयुक्त पूर्वोक्त समस्त द्रव्यों को जो सम्यक् प्रकार से नहीं देखता है उसके परोक्ष दर्शन होता है।

लोयालोयं जाणइ, अप्पाणं णेव केवली भगवं।
जई कोइ भणइ एवं, तस्स य किं दूसणं होइ।। (169)

केवली भगवान् लोकालोक को जानते हैं, किन्तु आत्मा को नहीं, यदि ऐसा कोई भी कहता है तो उसको क्या दूषण होता है।

णाणं जीवसरूवं तम्हा जाणेइ अप्पगं अप्पा।
अप्पाणं ण बि जाणदि, अप्पादो होदि विदिरित्तं।। (170)

ज्ञान जीव का स्वरूप है इसलिए आत्मा आत्मा को जानता है, यदि ज्ञान आत्मा को नहीं जानता है तो वह आत्मा से भिन्न हो जावेगा।

अप्पाणं विणु णाणं, णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो।
तम्हा सपरपयासं, णाणं तह दंसणं होदि।। (171)

तुम आत्मा को ज्ञान समझो और ज्ञान को आत्मा समझो, इसमें संदेह नहीं है। इसलिए ज्ञान और दर्शन स्वपर प्रकाशी होते है।

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र.	विषय	पृ.सं.
I.	आत्मबोध ही सबसे श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-क्लिष्ट	02
	जो एक को जानता	10
	आत्मबोध-गीताञ्जली	
1.	यथार्थ से अधार्मिक व धार्मिक	21
2.	आध्यात्मिक क्रम विकास से भव्यात्मा बने भगवान्	30
3.	स्व-दोष दूर करने के विविध उपाय (अंतरंग तप)	54
4.	सर्वोदय। (अन्त्योदय) नहीं है मानवकृत नीति-नियम	64
5.	भाषाज्ञान से करणीय भावज्ञान (सत्यज्ञान-आत्मज्ञान)	83
6.	सत् गृहस्थों (श्रावकों) के भी हर कार्य से होता है पापबन्ध	95
7.	8 मूलगुण व 12 व्रत युक्त श्रावक भी नहीं होता पूर्ण धार्मिक	103
8.	सातिशय पुण्य से पाप दूर व मोक्ष प्राप्ति (परम सकारात्मकता)	104
9.	ख्याति-पूजा-लाभ प्रसिद्धि त्याग से मुझे प्राप्त लाभ	106
10.	गुणी गुरु से सुयोग्य शिष्य होते स्वयमेव प्रेरित	112
11.	ध्यान मुनि हेतु परम कर्त्तव्य-(आत्मध्यानी मुनि ही यथार्थ से धर्मध्यानी)	113
12.	निस्पृह सन्त की साधना V/s मोही सन्त की प्रभावना	115
13.	अन्धेरा (भौतिक व भावात्मक) की आत्मकथा	116
14.	ग्राम V/s नगर	121
15.	मिट्टी की आत्मकथा व आत्मव्यथा	126
16.	भारतीय सड़क की आत्मकथा व आत्मव्यथा	132
17.	हंस की आत्मकथा-आत्मव्यथा व संदेश	134
18.	नदी की आत्मकथा व आत्मव्यस्था	135
19.	कमल की आत्मकथा व आत्मव्यथा	136
20.	मयूर की आत्मकथा व आत्मव्यथा	138
21.	दूध की आत्मकथा व आत्मव्यथा	139
22.	खेल की आत्मकथा व आत्मव्यथा	140
23.	नट (एक्टर) नदी (एक्टरेस) की आत्मकथा व आत्मव्यथा	145
24.	तू (मैं) कौन हूँ?	150
25.	मेरा विश्व रूप	151

(आत्मबोध-गीताञ्जली)

यथार्थ से अधार्मिक व धार्मिक

(अज्ञानी-मोही-स्वार्थी की धार्मिक क्रियाएँ भी अधर्म रूप)

(धर्म से धन-मानादि चाहने वाले अधर्मी)

- आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

अज्ञानी-मोही स्वार्थी जीवों के होते विपरीत भाव-व्यवहार।
सत्य-तथ्य व आत्महित रहित होते (हैं) पाप-बन्ध के भाव-व्यवहार।।
यथा कुछ उदाहरणों के द्वारा भी कह रहा हूँ यहाँ वर्णन।
जिससे उक्त विषयों का सहजता से होगा यथार्थ परिज्ञान।।(1)

रज-वीर्य व हड्डी-माँस से निर्मित शरीर को ही मानते 'मैं' स्वरूप।
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री-पद-प्रतिष्ठा को मानते 'मेरा' स्वरूप।।
इस हेतु ही धर्म भी करते है, नहीं आत्मा व अनात्मा ज्ञान।
हित-अहित भी नहीं जानते, भोगोपभोग में ही होते लीन।। (2)

निर्ग्रन्थ साधुओं से भी चाहते धन, विधान-प्रतिष्ठा (पंचकल्याणक) चातुर्मास से।
उनकी उपस्थिति व आदेश-निर्देश से चन्दा से ले बोली आदि से।।
इसके योग्य ही साधु बुलाते, जिस से हो भीड़ व धनार्जन।
धनार्जन व भीड़-प्रदर्शन को ही, मानते धर्म का प्रयोजन।। (3)

'बगुला भगत' व 'गोमुख व्याघ्र' सम, करते बाहर से जो धार्मिक काम।
किन्तु-ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-काम-क्रोध-तृष्णादि से जो होते हैं मलीन।।
परनिन्दा अपमान व वैर-विरोध करते जो धार्मिक जनों से भी।
संकीर्ण-कट्टर-पंथ मत से परे जो न करते पावन भाव-व्यवहार भी। (4)

ये सभी होते हैं अधार्मिक जीव भले वे हो कोई जाति-राष्ट्र के।
साक्षरी हो या निरक्षरी शहरी-ग्रामीण से ले धनी-गरीब आदि।।
उपर्युक्त दुर्गुणों से रहित होते (हैं) धार्मिक, वे होते है समता-शांतियुक्त।
आत्मविश्वास ज्ञान-चारित्र युक्त, ईर्ष्या-तृष्णा-घृणादि से रहित।। (5)

धर्म न करते सत्ता-सम्पत्ति (प्रसिद्धि) निमित्त, यह तो होता निदान रूप।।
निदान मात्र से ही छट्टे गुणस्थानवर्ती **साधु** भी हो जाते है अधार्मिक/मिथ्यात्वी।
सम्यग्दृष्टि **जैन** या **श्रावक** व्रती तक हो जाते निदान से **अधार्मिक**।। (6)

ओबरी, दिनांक 13.01.2018, रात्रि 08.11

सन्दर्भ :-

44 दोष रहित सम्यग्दृष्टि

मयमूढमणायदणं संकाइवसण भयमईयारं।
जेसिं चउदालेदो ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।7।।

अर्थ - जिनके आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, शंकादि आठ दोष, सात व्यसन, सात प्रकार के भय और पाँच प्रकार के अतिचार इस प्रकार चवालीस दूषण नहीं हैं, वे सम्यग्दृष्टि है।

77 गुणों सहित सम्यग्दृष्टि

उहयगुणवसण भयमलवेरग्गाइचारभत्तिविग्घं वा।
एदे सत्तत्तरिया दंसणसावयगुणा भणिया।।8।।

अर्थ - उभय गुण अर्थात् श्रावक के आठ मूलगुण और बारह व्रत (उत्तर गुण) सप्तव्यसन, सातभय, आठमद, आठ शंकादि दोष, तीन मूढ़ता, छह अनायतन इन दोषों से रहित तथा वैराग्य उत्पन्न करने वाली भावनाएँ और मूल गुणों में और उत्तर गुणों में लगने वाले अतिचार अथवा सम्यक्त्व के पाँच अतिचार रहित भक्ति व विघ्न रहित इन सबको मिलाकर सतहत्तर सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण होते हैं इस प्रकार भगवान् ने कहा है।

मुक्ति सुख के पात्र कौन?

देवगुरुसमयभत्ता संसार सरीर भोग परिचित्ता।
रयणसत्तयसंजुत्ता ते मणुया सिवसुहं पत्ता।।9।।

अर्थ - जो भव्य मनुष्य देव शास्त्र और गुरु के भक्त हैं, और जिन्होंने संसार शरीर और भोगों से मुख मोड़ लिया है अर्थात् त्याग कर दिया है, तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र से संयुक्त है ऐसे वे मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं।

सम्यग्दर्शन के बिना दीर्घ संसार

दाणं पूया सीलं उपवासं बहुविहंपि खवणंपि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं सम्मविणा दीहसंसारं।।10।।

अर्थ - चतुर्विध संघ-मुनि आर्यिका पिंच्छी कमंडलुधारी त्यागी व व्रतधारी श्रावक श्राविकाओं के लिए आहारदान, ज्ञानदान, औषधदान व अभयदान वस्तिकादान देना। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, दिगम्बर साधु और जिनवाणी शास्त्र की पूजा करना। एक देश या सकल देश निरतिचार ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना। अष्टमी चतुर्दशी प्रौषध के साथ उपवास करना अथवा अन्य भी एक दो तीन आदि उपवास करना और भी अनेक धर्मानुष्ठान के उपवास करना। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित करने पर मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। अर्थात् सम्यक्त्व के बिना सब दीर्घ संसार के लिए कारण है।

श्रावक व मुनि धर्म के मुख्य कर्त्तव्य

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मो ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं जइधम्मो तं विणा तहा सोवि।।11।।

अर्थ - श्रावक के मुख्य छह आवश्यक कर्त्तव्य हैं, वे दान देना, पूजा करना ये दोनों ही श्रावक के मुख्य नित्य कर्त्तव्य हैं, इनके न करने पर श्रावक नहीं है। क्रिया नहीं है तो श्रावक धर्म नहीं है, श्रावक नहीं है। तथा ध्यान और अध्ययन करना यह मुनि का मुख्य कर्त्तव्य है, मुनिधर्म की षट् क्रियाएँ हैं, ये ध्यान अध्ययनादि मुख्य क्रियाएँ करते नहीं है तो वह मुनिधर्म नहीं है और मुनि नहीं है। अर्थात् मुनि आर्यिका ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका पिच्छिधारी सभी त्यागी जनों का धर्म का व्रत पालन करना निश्चल कर्त्तव्य है, अगर यथारूप पालन नहीं करेगा तो वह त्यागी नहीं है।

बहिरात्मा की परिणति पतंगे के समान

दाणु ण धम्मुण चागु ण भोग गुण बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोहकसायग्गिमुहे पडिउ मरिउ ण संदेहो।।12।।

अर्थ - जो श्रावक (गृहस्थ) चार प्रकार का दान तथा सप्त क्षेत्रों में दान नहीं करता है, चारित्र एवं उत्तम क्षमादि दश धर्मों का पालन नहीं करता है, हिंसादि पापारंभों का त्याग नहीं करता है, और धन का भोग भी नहीं भोगता है, वह मनुष्य मोही बाह्यदृष्टि

बहिरात्मा है, लोभकषाय रूपी अग्नि के मुख में पड़कर मरण को प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। जिस प्रकार पतंगा दीपक की ज्योति को खाने के लोभ से ज्योति के ऊपर जाता है और जलकर मर जाता है, उसी प्रकार लोभी मनुष्य की दशा होती है।

पूजा-दान-धर्म को करने वाले सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गस्थ हैं।

जिणपूजा मुणिदाणं करेइ जो देइ सत्तिरूवेण।

सम्माइट्ठी सावय धम्मी सो होइ मोक्खमग्गरओ।।13।।

अर्थ - जो भव्य जीव न्यायपूर्वक कमाए हुए धन से अनेक प्रकार से भगवान् जिनेन्द्र देव की गाजे बाजे नृत्यादि करता हुआ पंचामृत अभिषेक पूजा करता है, उत्सव मनाता है, और चतुर्विध संघ को आहार दानादि में द्रव्य खर्च करता है, शास्त्र प्रकाशन करता है, धर्म की प्रभावना आदि अनेक प्रकार के धर्मकार्य अपनी शक्ति के अनुसार करता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक धर्मात्मा मोक्षमार्ग में रत होता है, मोक्षमार्गस्थ है, मोक्ष अधिकारी है।

सम्यग्दृष्टि के द्वारा किये हुए पुण्य का फल

सम्मादिट्ठी पुण्णं ण होइ संसारकारणं णियमा।

मोक्खस्स होइ हेउं जइ वि णियाणं णं सो कुणइ।। (404 भाव.)

अर्थ - सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया हुआ पुण्य संसार का कारण कभी नहीं होता है यह नियम है। यदि सम्यग्दृष्टि के द्वारा किये हुए पुण्य में निदान न किया जाए तो वह पुण्य नियम से मोक्ष का ही कारण होता है।

भावार्थ - कोई भी पुण्य कार्य कर उससे आगामी काल के भोगों की इच्छा करना या और कुछ चाहना निदान है, निदान नरक का कारण है। इसलिये उत्तम पुरुषों को निदान कभी नहीं करना चाहिये।

अकयणियाणसम्मो पुण्णं काऊण णाणचरणट्ठो।

उप्पाज्जइ दिवलोए सुहपरिणामो सुलेसो वि।। (405)

अर्थ - जिस सम्यग्दृष्टि पुरुष के शुभ परिणाम है, शुभ लेश्याएँ हैं तथा जो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को धारण करता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि पुरुष यदि निदान नहीं करता तो वह पुरुष मरकर स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है।

निर्माल्य द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम

जिण्णुद्धार पतिट्ठा जिणपूजा तित्थवंदण विसयं धणं।
जो भुंजइ सो भुंजइ जिणदिट्ठ णरयगय दुक्खं।।32।।

भावार्थ - जो पुण्यात्मा भव्यात्मा पुरुष जिनमंदिर जीर्णोद्धार, जिनबिंब प्रतिष्ठा, जिनपूजा अर्थात् प्रतिदिन भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा पंचामृताभिषेक आदि तथा मुनि त्यागी संघ को तीर्थ क्षेत्रों की वंदना दर्शनार्थ ले जाने के लिए दिया हुआ, रथोत्सव, जिनशासन प्रकाशन में रखा हुआ धन, रूपया आदि विशेषकर अनेक प्रकार धर्मानुष्ठान के लिए दिया गया जमीन दुकान मकान आदि खा लेना ऐसे मनुष्य प्राणी नरकगति के तीव्र दुःखों को भोगता है ऐसा जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है।

विशेषार्थ - किसी भी प्रकार का धन, किसी भी प्रकार के जिनेन्द्र भगवान के आयतनों के कार्यों में, मुनिसंघ सेवा आदि में दिया हुआ धन, रूपया आदि नष्ट करना एवं अपने व्यापार उद्योग में लगा लेना आदि करने से मोक्ष मार्ग में अरगला लगा देते हैं वे मनुष्य दुर्गति दुःख को भोगते हैं।

पूजा-दान आदि के द्रव्य के अपहरण का परिणाम

पुत्तकलित्तविदूरो दारिद्दो पंगु मूक बहिरंधो।
चण्डालाइ कुजादो पूजादाणाइ दव्वहरो।।33।।

अर्थ - जो मनुष्य पूजा प्रतिष्ठा तीर्थयात्रा जीर्णोद्धार आदि के लिए सुरक्षा में दिया गया दान-द्रव्य का अपहरण करता है वह पुत्र स्त्री भाई आप्तगण आदि कुंटुंबी जनों से रहित होता है, और चाण्डाल आदि जाति में, नीच गति में उत्पन्न होता है। दरिद्री धनहीन बनता है, पंगु, गूंगा, बहरा, अंधा होकर जन्म लेता है।

पूजा-दान के द्रव्य का अपहरण बीमारियों का घर

इत्थियफलं ण लब्भइ जइ लब्भइ सो ण भुंजदे णियदं।
वाहीणमायरो सो पूजादाणइदव्वहरो।।34।।

अर्थ - जो मनुष्य पूजा के निमित्त प्रदान किये हुए द्रव्य का अपहरण करता है उसे किसी भी प्रकार की कदापि द्रव्य प्राप्ति नहीं होती है। अर्थात् इच्छित फल को प्राप्त नहीं होता है। उसके पुण्य के उदय कदापि नहीं होता है। कदाचित् इष्ट वस्तु का संयोग

प्राप्त हो जाय तो भी उसका फल भोग नहीं सकता क्योंकि रोगादि से पीड़ित होता है या अन्य कुछ कारण बनते हैं कि उसका भोग नहीं ले सकता है।

दानद्रव्य के अपहरण से विकलांग

गयहत्थपायणासिय कण्णउरं गुलविहीणदिट्ठीए।
जो तिव्वदुक्खमूलो पूयादाणाइ दव्वहरो।।35।।

अर्थ - जो मनुष्य पूजा प्रतिष्ठादि के निमित्त प्रदान किए हुए द्रव्य का अपहरण करता है वह हाथ पैर नासिका कर्ण अंगुलि आदि रहित हीनांग होता है। आँखों से अन्धा होता है और तीव्रतर दुःख को प्राप्त होता है।

पूजा-दानादि धर्मकार्यों में अन्तराय करने का फल

खयकुट्ठमूलसूलो लूयभयंदरजलोयरक्खिसिरो।
सीदुण्ह वाहिराइ पूजादाणांतरायकम्मफलं।।36।।

अर्थ - जो मनुष्य लोभ मोह के वश होकर श्रीजिनेन्द्र भगवान् की पूजा के निमित्त दान किये हुए द्रव्य का अपहरण कर पूजादि धार्मिक कार्यों में अंतराय डालता है, विघ्न करता है, पुण्योत्पादक कार्य का विध्वंस करता है वह क्षय, कोढ़, लूल, जलोदर, भगंदर, गलकुष्टि, वात, पित्त, कफ और सन्निपात आदि रोगों की तीव्र वेदना को प्राप्त होता है।

बहिरात्मा का लक्षण

णिय अप्प णाण ज्झाण ज्झयण सुहामियरसायणपाणं।
मोत्तूणक्खाणसुहं जो भुंजइ सो हु बहिरप्पा।।132।।

अर्थ - जो मुनि अपने निज आत्मा को ज्ञान ध्यान अध्ययन से उत्पन्न होने वाला सुखामृत का पान करता है। वह सुखरूप अमृत केवल अपने आत्मा से उत्पन्न होता है। आत्मा से उत्पन्न होने वाला वह सुखामृत एक अपूर्व रसायन के समान है। इस आत्मजन्य सुखामृत रूपी रसायन को पीने वाला या अनुभव करने वाला परमात्मरूप कहलाता है। तथा इससे विपरीत कर्मबंधयुक्त संसार को बढ़ाने वाला जो इन्द्रियजन्य सुखों का अनुभव करता है, इन्द्रिय वासनाओं के भोगों में लीन रहता है वह दुःख का अनुभव करता है उसे बहिरात्मा समझना चाहिये। बहिरात्मा ही है।

इन्द्रिय विषय किंपाक फलवत्

किंपाय फलं पक्कं विसमिस्सिदं मोदमिव चारु सुहं।

जिब्भसुहं दिट्ठिपियं जह तह जाणक्ख सोक्खं पि।।133।।

अर्थ - किंपाक फल एक विष फल है-जो कि देखने में अत्यन्त सुन्दर दिखता है, खाने में अत्यन्त मधुर-स्वादिष्ट होता है, पकने पर वह बहुत ही मीठा और अच्छा हो जाता है, परन्तु वह विषफल है, उसको खाते ही मनुष्य मर जाता है। जिस प्रकार किंपाक फल खाने में, देखने में, मधुरता आदि में सर्वसुन्दर लगता है उसी प्रकार इन्द्रियों का सुख क्षणभर के लिए सुख सा प्रतीत होता है, उस समय अच्छा सा जान पड़ता है, परन्तु यह किंपाक फल के समान ही है। इन्द्रियों के भोगने से जीव अनेक प्रकार के दुःखों का भागी होता है। आयु घटती है, शाक्ति क्षीण हो जाती है। अनेक रोग भी उत्पन्न होते हैं और जीवितपने में भी मरने के समान जीवन को दुःख में बिताता है और मर जाता है। तथा संसार में दुर्गति में दीर्घकाल तक भ्रमण करता है।

बहिरात्मा की सामग्री

देह कलत्तं पुत्तं मित्ताइ विहाव चेदणासरूवं।

अप्पसरूवं भावइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।134।।

अर्थ - जो जीव अपने आत्मा के निज स्वरूप को छोड़कर स्त्री पुत्र मित्र आदि बाह्य वैभाविक वस्तु को अपना आत्मरूप मानता है। तथा बाह्य वस्तुओं में राग द्वेष मोह आदि को अपना ही मानकर चलता है। वे वैभाविक परिणाम आत्म के नहीं है, आत्मा का स्वरूप ही नहीं है। आत्मा और शरीरादि अत्यन्त हर प्रकार से भिन्न ही भिन्न हैं।

क्योंकि आत्मा ज्ञान दर्शन स्वभाव लक्षण रूप है और शरीरादि पुद्गल जड़ द्रव्य से बने हैं। ऐसे पर रूपादि द्रव्य वस्तु को आत्मस्वरूप मानने वाला जीव अवश्य ही बहिरात्मा है।

बहिरात्मा के भाव

इंदिय विसय सुहाइसु मूढ़मई रमण ण लहइ तच्चं।

बहुदुक्खमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।135।।

अर्थ - अज्ञानी मोही जीव पंचेन्द्रिय विषय वासनाओं में आसक्त रहता है।

विषयों में आसक्ति के कारण जीवादि तत्त्वों का विचार नहीं करता है। अर्थात् आत्म तत्त्व-जीवादि तत्त्वों में अनभिज्ञ है। उसे रूचिकर नहीं लगता है तो इस जीव को कैसा सुख प्राप्त होगा? इसे दुःख ही भोगना पड़ेगा। इसका विचार भी नहीं आता है वह बहिरात्मा है।

दुःख का कारण इन्द्रिय जनित सुख

जं जं अक्खाण सुहं तं तं तिव्वं करेइ बहुदुक्खं।
अप्पाणमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।136।।

अर्थ - जो जीव-संसार में रहते हुए संयम को पालन करते हैं, देव शास्त्र गुरु, धर्म पर श्रद्धान करते हैं दान पूजा धर्म की सेवा करते हैं, इन्द्रियों के व्यसनाधीन नहीं होते हैं, पाप से डरते हैं, कोई भी पाप कार्य करते नहीं हैं, व्रत नियम का पालन करते हैं, व्रतों में अतिचार लगाने नहीं देते हैं, प्रायश्चित भी लेते हैं ऐसे ऐसे भव्य पुण्यात्मा जीव जीवन सुख से शुद्ध बनाकर चलते हैं वे सुगति को प्राप्त होते है।। वे धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि कहलाते हें। वे मोक्षमार्गस्थ बन जाते हैं।

परन्तु जो जो जीव इन्द्रिय जनित वासनाओं को शांत करने के लिए और उसी को सुख मानकर उसी में आसक्त होते हैं, उनको अन्य सत् शुद्ध मार्ग अच्छा नहीं लगता है, वे अपने उत्तम मनुष्य पर्याय, धर्म, कुल जाति जीवन को बरबाद कर लेते हैं। जो इन्द्रिय वासनाओं में फसा है, वे कौन सा पाप नहीं करते हैं? सब कुछ पाप कार्य करने लगते हैं, एक भी व्यसन सब पापों का द्वार बन जाता है। ऐसे जीव की मति भ्रष्ट होती है, स्वयं के जीवन को तो नष्ट कर दिया है, परन्तु कुल को, कुटुंबी जनों को धर्म को, समाज को भी कलंकित करता है और दुर्गति में प्रवेश कर असंख्य तीव्र दुःखों को भोगता है। फिर दुर्गति से, दुःखों से छुटकारा पाना महादुर्लभ होता है-ऐसे जीव पापी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी बहिरात्मा कहलाते हैं।

जहाँ सामान्य रूप से जीव को व्यसनादि रहित, इन्द्रिय वासनाओं से रहित विवेक पूर्वक अमूल्य जीवन को जानते नहीं, तो अपनी आत्मा को भी जान नहीं पाते हैं-इसलिए वे जीव बहिरात्मा ही हैं।

बहिरात्म जीवों का विषय

जेसिं अमेज्झमज्झे उप्पणाणं हवेइ तत्थेव रुई।
तह बहिरप्पाणं बहिरिंदिय विसएसु होइ मई।।137।।

अर्थ - जिस प्रकार जो जीव विष्ठा में जन्म लेता है, अर्थात् उत्पन्न होता है वह विष्ठा में ही रहने में आनंद मानता है, उसी स्थान में उसी योनि से प्रेम करने लगता है। यदि उस विष्टा से बाहर निकलते है, तो वह कीड़ा विष्ठा में ही प्रवेश करता है, उसी में छुप जाता है।

उसी प्रकार आत्म स्वभाव से परांगमुख मनुष्य पंचेन्द्रिय विषयों में और सप्त व्यसनों में आनंद मानता है और अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर देता है और दुर्गति में पहुँचता है आचार्य ने ऐसे जीवों को बहिरात्मा कहा है।

अन्तरात्मा का लक्षण

सिविणे वि ण भुंजइ विसयाइं देहाइ भिण्ण भावमई।
भुंजइ णियप्परूवो सिवसुहरत्तो दु मज्झिमप्पो सो।।138।।

अर्थ - जो आत्मा अपने आत्मा को शरीरादिक से सर्वथा भिन्न मानता है तथा जो विषयों का अनुभव कभी स्वप्न में भी नहीं करता है। जो सदा अपने आत्मा का अनुभव करता रहता है अर्थात् आत्म सुख में लीन रहता है, उसे अंतर आत्मा अर्थात् मध्यम आत्मा कहते हैं।

भावार्थ : आत्मा में अनंत सुखामृत भरा हुआ है, जिसका पान करते हुए अनंत काल बीत जाने पर भी समाप्त नहीं होता है। जो आत्मा के निज स्वरूप को जानता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। इन्द्रिय जन्य विषय सुखों को आत्मा से भिन्न मानता है और तीव्र दुःख देने वाले हैं ऐसा समझता है। इस कारण वह उन विषयों का कभी सेवन नहीं करता है। वह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष केवल अपनी आत्मा को ही अपना समझता है। तथा आत्मा का ही सदा अनुभव करता है। मोक्ष के अनंत शाश्वत सुख को प्राप्त करने की सदा लालसा रखता है। सदा प्रयत्न करता है, भावना करता है, ऐसा शुद्ध आत्मा का अनुभव करने वाला जीव सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

जैन धर्म की परम विशेषता-

आध्यात्मिक क्रमविकास से भव्यात्मा बने भगवान्

(भव्य-अभव्य (मिथ्यादृष्टि) - सम्यग्दृष्टि-जैन-श्रावक-श्रमण-अरिहंत-सिद्ध)

-आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

जैन धर्म की परम शिक्षा है आध्यात्मिक-क्रमविकास।
मानव से महामानव व जीव से जिनेन्द्र बनने का परम-लक्ष्य।।
जैन धर्म में वर्णित है, विश्व के समस्त सत्य-तथ्य।
तथापि प्रमुख वर्णन है, जीवों के आध्यात्मिक क्रम-विकास।। (1)
चार गति व चौरासी लक्ष्य योनिओं का भी वर्णन है जैनधर्म में।
तथापि आध्यात्मिक विकास बिन नहीं मिले अनंत सुख संसार में।।
विश्व में होते है अनन्तानन्त जीव संसारी तथा मुक्त।
मुक्त बनने हेतु आत्म विकास अनिवार्य, मुक्ति में/ (से) मिले अनन्त सुख। (2)
भव्य जीव ही मोक्ष प्राप्त करते हैं, आध्यात्मिक क्रम विकास से।
अभव्य जीव भले बन सकते (है) देव, राजा व पशु तक में भी।।
भद्र मिथ्यादृष्टि भी होते हैं शुभ लेश्या के कारण शान्त व सरल।
ऐसे जीव यदि होते हैं भव्य आगे वे बनते सम्यक्त्वी से मुक्त।। (3)
भव्य जीव जब सुद्रव्यक्षेत्र-काल-भावादि को, पाकर बनते (हैं) सम्यग्दृष्टि।
तब से आत्मविकास प्रारम्भ होता, चारों गति में होते सम्यग्दृष्टि।।
सम्यग्दृष्टि से ही होते 'जैन' संज्ञा, जो होते देव-शास्त्र-गुरु भक्त।
सप्ततत्त्व नव पदार्थ सहित, स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान रूपी सम्यक्त्व।। (4)
ऐसे जीव स्वयं को न मानते शरीरमय, स्वयं को मानते चेतनामय।
अनंतज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमय, स्वयंभू-सनातन-अमृतमय।।
आत्मविशुद्धि और भी होता आत्मविकास जिससे बनते जीव श्रावक।
फैशन-व्यसन व अन्याय-भ्रष्टाचार रहित व ज्ञान-वैराग्य-संयुक्त।। (5)

दान-दया-सेवा-परोपकार सहित, मैत्री-प्रमोद-कारुण्य माध्यस्थ युक्त।
आठ मूलगुण बारहव्रत सहित, उदार-पावन भावना संयुक्त।।
और भी आत्मविशुद्धि द्वारा, आध्यात्मिकशक्ति की होती है वृद्धि।
जिससे मानव/(श्रावक) दोनों प्रकार के, परिग्रह त्याग से बनते मुनि।।(6)
मुनि बनकर समता-शान्ति व, निस्पृहता से करते हैं आत्मविशुद्धि।
ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि रहित, ध्यान-अध्ययन से आत्मविशुद्धि।।
जिससे आत्मिक शक्ति बढ़ती, जिससे होता आत्मिक तीव्र विकास/(श्रेणी आरोहण)
चारों घाति कर्म विनाश से, पाते अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य।।(7)
इसे कहते हैं ''अरिहंत'' अवस्था, यहाँ न होते अठारह प्रकार दोष।
सात सौ अठारह भाषाओं में विश्व को, देते वे आध्यात्मिक संदेश।।
अन्त में अघाति कर्म नाशकर बन जाते हैं शुद्ध-बुद्ध-आनन्द।
तन-मन-इन्द्रिय व जन्म-जरा-मरण रहित भोगते वे आत्मानन्द।। (8)
जैन धर्म का यह परम सिद्धान्त, हर भव्यात्मा बन सकते परमात्मा।
ऐसे दिव्य संदेश को साकार करने हेतु, 'कनक श्रमण' करे साधना।।(9)

ओबरी, दिनांक 14.01.2018, रात्रि 08.23
(यह कविता मुनि सुविज्ञसागंर के कारण बनी)

पूर्वजों ने बंदर को इंसान बनते नहीं देखा, स्कूलों में नहीं पढ़ाना चाहिए डार्विन का गलत सिद्धांत : सत्यपाल

केन्द्रीय मंत्री ने कहा – जब से धरती पर इंसान रहा है, इंसान ही देखा गया है।

केन्द्रीय मानव संसाधन विकास राज्य मंत्री सत्यपालसिंह ने इंसानों के विकास पर चार्ल्स डार्विन के सिद्धांत को 'वैज्ञानिक रूप से गलत' बताया है। उन्होंने स्कूल और कॉलेज के पाठ्यक्रम में इसमें बदलाव करने को कहा। सिंह ने कहा, 'हमारे पूर्वजों ने मौखिक या लिखित तौर पर कभी किसी एप (बंदर) के इंसान बनने का उल्लेख नहीं

किया है।' उन्होंने मीडिया से बातचीत में कहा, (इंसानों के विकास संबंधी) चार्ल्स डार्विन का सिद्धांत वैज्ञानिक रूप से गलत है।

स्कूल और कॉलेज पाठ्यक्रम में इसे बदलने की जरूरत है। इंसान जब से पृथ्वी पर देखा गया है, हमेशा इंसान ही रहा है।' ऑल इंडिया वैदिक सम्मेलन में हिस्सा लेने मध्य महाराष्ट्र के इस शहर में आए पूर्व आईपीएस अधिकारी ने कहा, 'हमारे किसी भी पूर्वज ने लिखित या मौखिक रूप में एप के इंसान में बदलने का जिक्र नहीं किया था।' डार्विनवाद जैविक विकास से संबंधित सिद्धान्त है। उन्नीसवीं सदी के अंग्रेज प्रकृतिवादी डार्विन और अन्य ने यह सिद्धांत दिया था। कुछ दिन पहले राजस्थान के शिक्षामंत्री ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का जनक न्यूटन की जगह भारतीय खगोलशास्त्री ब्रह्मगुप्त को बताया था।

1. क्या है डार्विन का क्रमिक विकास का नियम?

यह चार्ल्स डार्विन ने वर्ष 1858 में थ्योरी ऑफ इवोल्यूशन को संसार के सामने रखा था। उनका मानना था कि हम सभी के पूर्वज एक है। पौधों का उदाहरण देते हुए बताया कि मानव के पूर्वज भी पहले बंदर हुआ करते थे। लेकिन कुछ बंदर अलग स्थान अलग तरह से रहने लगे इस कारण धीरे-धीरे जरूरतों के अनुसार उनमें परिवर्तन आने प्रारम्भ हो गए। इस तरह क्रमिक विकास होते-होते बंदर की प्रजाति मानव जाति बन गई।

चार्ल्स रॉबर्ट डॉर्विन

विज्ञान का भगवान से कुछ भी लेना देना नहीं। मैं नहीं मानता कि ईश्वर ने किसी दूत के जरिए मनुष्य की रचना में निहित अपने उद्देश्यों को कभी बताया होगा।

2. आखिर डार्विन के सिद्धान्त के विरोध में क्या हैं तर्क?

डार्विन के विरोधियों का एक तर्क है कि एक व्यक्ति के पास 46 गुणसूत्र होते हैं और एक बंदर में 48 गुणसूत्र होते हैं। ऐसे में ये बात कि बंदर मनुष्य के पूर्वज थे उचित प्रतीत नहीं होती। उनका कहना कि ये बात किस तरह संभव हो सकता है कि क्रमिक विकास के दौरान मनुष्य ने गुणसूत्रों को खो दिया। इसके अलावा सृष्टिवादियों का मानना है कि कोशिका का निर्माण संभव नहीं। सबकुछ सृष्टि के रचयिता का बनाया है।

सन्दर्भ-

जीवों के पारिणामिक भाव के भेद

जीवभव्याभव्यत्वानि च। (7)

The 3 kinds of the souls natural throught activity are;

1. जीवत्व Consciousness, livingness or Soulness in a Soul.

2. भव्यत्व Capacity of being liberated

3. अभव्यत्व Incapacity of becoming liberated

आगे कहते हैं कि जो ज्ञान क्रम से

पारिणामिक भाव के तीन भेद है -

(1) जीवत्व, (2) भव्यत्व, (3) अभव्यत्व।

जो भाव कर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के बिना होते हैं, उन्हें पारिणामिक भाव कहते हैं। ये पारिणामिक भाव अन्य द्रव्यों में नहीं होते इसलिए ये आत्मा के जानने चाहिए।

(1) **जीवत्व**-जीवत्व का अर्थ चैतन्य है। यद्यपि यह जीव शुद्ध निश्चयनय से आदि, मध्य और अंत से रहित, निज तथा पर का प्रकाशक, उपाधिरहित और शुद्ध ऐसा जो चैतन्य (ज्ञान) रूप निश्चय प्राण है, उससे जीता है, तथापि अशुद्ध निश्चयनय से अनादि कर्मबंधन केवश से अशुद्ध जो द्रव्य प्राण और भाव प्राण है, उनसे जीता है इसलिये जीव है। इसका जो भाव है वह जीवत्व है।

(2) **भव्यत्व**- जिसके सम्यग्दर्शन आदि भाव प्रकट होने की योग्यता है वह भव्य कहलाता है। अथवा भावी भगवान् को भव्य कहते हैं। इसका भाव भव्यत्व है।

(3) **अभव्यत्व**- जिसमें सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमन करने की शक्ति नहीं है वह अभव्य है। इसका जो भाव है वह अभव्यत्व है।

गोम्मट्टसार में कहा भी है -

भविया सिद्धि जेसिं, जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा।

तव्विवरीयाऽभव्वा, संसारादो ण सिज्झंति।। (557)

जिन जीवों की अनंत चतुष्टरूप सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हो उनको भवसिद्ध कहते हैं। जिनमें इन दोनों में से कोई भी लक्षण घटित न हो उन

जीवों को अभव्यसिद्ध कहते हैं।

कितने ही भव्य ऐसे हैं जो मुक्ति प्राप्ति के योग्य हैं, परन्तु कभी मुक्त न होंगे; जैसे बंध्या के दोष से रहित विधवा सती स्त्री में पुत्रोत्पत्ति की योग्यता है; परन्तु उसके कभी पुत्र उत्पन्न नहीं होगा। इसके सिवाय कोई भव्य ऐसे है जो नियम से मुक्त होंगे। जैसे बंध्यापने के दोष से रहित स्त्री के निमित्त मिलने पर नियम से पुत्र उत्पन्न होगा। इस तरह योग्यता के भेद के कारण भव्य दो प्रकार के हैं। इन दोनों योग्यताओं से जो रहित है उनको अभव्य कहते हैं। जैसे बंध्या स्त्री के निमित्त मिले चाहे न मिले, परन्तु पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकता है। जिनमें मुक्ति प्राप्ति की योग्यता है उनको भव्यसिद्ध कहते हैं। इस अर्थ को दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करते हैं-

भव्वत्तणस्य जोग्गा, जे जीवा ते हंवति भवसिद्धा।
ण हु मलविगमे णियमा, ताणं कणयोवलाणमिव।। (558)

जो जीव अनन्त चतुष्टयरूप सिद्धि की प्राप्ति के योग्य हैं; उनको भवसिद्ध कहते हैं किन्तु यह बात नहीं है कि इस प्रकार के जीवों का कर्ममल नियम से दूर हो ही। जैसे-कनकोपल का।

ऐसे ही बहुत से कनकोपल हैं जिनमें कि निमित्त मिलाने पर शुद्ध स्वर्णरूप होने की योग्यता तो है, परन्तु उनकी इस योग्यता की अभिव्यक्ति कभी नहीं होगी। अथवा जिस तरह अहमिन्द्र देवों में नरकादि में गमन करने की शक्ति है परन्तु उस शक्ति की अभिव्यक्ति कभी नहीं होती। इस ही तरह जिन जीवों में अनंत चतुष्टय को प्राप्त करने की योग्यता है परन्तु उनको वह कभी प्राप्त नहीं होगी उनको भी भवसिद्ध कहते हैं। ये जीव भव्य होते हुए भी सदा संसार में ही रहते हैं।

ण य जे भव्वाभव्वा, मुक्तिसुहातीदणंतसंसार।
ते जीवा णायव्वा, णेव य भव्वा अभव्वा य।। (559)

जिनका पाँच परिवर्तनरूप अनंत संसार सर्वथा छूट गया है और इसलिये जो मुक्ति सुख के भोक्ता हैं उन जीवों को न तो भव्य समझना और न अभव्य समझना चाहिये; क्योंकि अब उनको कोई नवीन अवस्था प्राप्त करना शेष नहीं रही है। इसलिये भव्य भी नहीं हैं और अनंत चतुष्टय को प्राप्त कर चुके हैं इसलिये अभव्य भी नहीं है।

जिनमें अनंत चतुष्टय के अभिव्यक्त होने की योग्यता ही नहीं हो उसको अभव्य कहते हैं। अतः मुक्त जीव अभव्य भी नहीं है; क्योंकि इन्होंने अनंत चतुष्टय को प्राप्त कर लिया है और **''भवितुं योग्या भव्या''** इस निरुक्ति के अनुसार भव्य उनको कहते है जिनमें अनंत चतुष्टय को प्राप्त करने की योग्यता है। किन्तु अब वे इस अवस्था को प्राप्त कर चुके, इसलिए उनके भव्यत्व रूप योग्यता का परिपाक हो चुका अतएव अपरिपक्व अवस्था की अपेक्षा से भव्य भी नहीं है।

जीव का लक्षण

उपयोगो लक्षणम्। (8)

The lakshna of differentia of soul is upayoga, attention, consiousness, attenticveness.

उपयोग जीव का लक्षण है

इस सूत्र में जीव के महत्त्वपूर्ण सद्भूत लक्षण का वर्णन है। पहले अध्याय में जीव के ज्ञान गुण का वर्णन मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है तो इस अध्याय में भी जीव के भावों का वर्णन असाधारण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है तो इस अध्याय में भी जीव के भावों का वर्णन असाधारण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। उपयोग जीव के असाधारण भाव या लक्षण होने के कारण यह भाव अन्य अजीव पदार्थ में नहीं पाया जाता है तथा किसी भी रासायनिक प्रक्रिया से उपयोग शक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। डार्विन आदि वैज्ञानिक जो रसायनिक प्रक्रिया से जीव की उत्पत्ति मानते हैं वह सिद्धांत कपोल-कल्पित, अविचारित रम्य है। इस सिद्धांत का खण्डन मेरी (कनकनन्दी) ''विश्व विज्ञान रहस्य'' पुस्तक में किया है। जिज्ञासु वहाँ से देखकर अध्ययन करें।

पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्द देव ने इसका वर्णन सविस्तार से निम्न प्रकार किया है-

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि।। (40)

उपयोग वास्तव में दो का प्रकार है ज्ञान और दर्शन से संयुक्त अर्थात् ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। यह सर्वकाल इस जीव से एकरूप है जुदा नहीं है ऐसा जानो।

वत्थुणिमित्तं भावो, जादो जीवस्स दु उवयोग।

जीव का जो भाव वस्तु को (ज्ञेय को) ग्रहण करने के लिये प्रवृत्त होता है उसको उपयोग कहते हैं।

द्रव्यसंग्रह में नेमिचन्द्राचार्य ने कहा भी है-

''जीवों उवओगमओ'' ''जीवो'' शुद्धनिश्चयनयेनादिमध्यान्त-वर्जितस्वपरप्रकाशकाविनश्वरनिरूपाधिशुद्धचैतन्यलक्षणनिश्चयप्राणेन यद्यपि जीवति, तथाप्यशुद्धनयेनानादिकर्मबन्धवशादशुद्धद्रव्यभाव प्राणैर्जीवतीति जीवः।

यद्यपि यह जीव शुद्धनिश्चयनय से आदि मध्य और अंत से रहित निज और पर का प्रकाशक, उपाधि रहित और शुद्ध ऐसा जो चैतन्य (ज्ञान) रूप निश्चय प्राण है, उससे जीता है, तथापि अशुद्धनिश्चयनय से अनादि कर्म बंधन के वश से अशुद्ध जो द्रव्य प्राण और भाव प्राण है, उनसे जीता है इसलिये जीव है।

उपयोग के भेद

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः। (9)

(Attention is of) 2 kinds which is subdivided in to 8 and 4 kinds

ज्ञानोपयोग Knowledge attention :

दर्शनोपयोग Conation attention:

उपयोग Is a modification of Consiousness, which is an essential attribute of the soul. Thus attentiveness is kind of consciousness. Consciousness iss a characteristic of the knower, the soul.

वह उपयोग दो प्रकार का है- ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग।

ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनोपयोग चार प्रकार का है।

जो अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के निमित्त से होता है और चैतन्य को छोड़कर अन्य द्रव्यों में नहीं रहता है वह 'उपयोग' कहलाता है। वह उपयोग दो प्रकार का है, ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, मत्यज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान। दर्शनोपयोग चार प्रकार का-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

साकार और अनाकार के भेद से इन दोनों उपयोग में भेद है। साकार ज्ञानोपयोग है

और अनाकार दर्शनोपयोग। वे दोनों छद्मस्थों के क्रम से होते हैं और कर्म आवरण रहित जीवों के युगपत् होते हैं। यद्यपि दर्शन पहले होता है तो भी श्रेष्ठ होने के कारण सूत्र में ज्ञान को दर्शन से पहले रखा है।

नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने गोम्मट्टसार में उपयोग का वर्णन निम्न प्रकार से सविस्तार से किया है-

वत्थुणिमित्तं भावो, जादो जीवस्स जोदु उवजोगो।
सो दुविहो णायव्वो, सायारो चेव अणायारो।।(672)

जीव को जो भाव वस्तु को (ज्ञेय को) ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त होता है उसको उपयोग कहते हैं। इसके दो भेद हैं-एक साकार (विकल्प) और दूसरा निराकार (निर्विकल्प)।

णाणं पंचविहं पि य, अण्णाणतियं च सागरुवजोगो।
चदुदंसणमणगारो, सव्वे तल्लक्खणा जीवा।। (673)

पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान-मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवल और तीन प्रकार का अज्ञान-मिथ्यात्व-कुमति, कुश्रुत, विभंग ये आठ साकार उपयोग के भेद हैं। चार प्रकार का दर्शन-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन अनाकार उपयोग है। यह उपयोग ही सम्पूर्ण जीवों का लक्षण है, क्योंकि उपयोग के इन 12 प्रकारों में से जीव के कोई न कोई उपयोग अवश्य रहा करता है।

साकार उपयोग में कुछ विशेषता-

मदिसुदओहिमणेहि य, सगसगविसये विसेसविण्णाणं।
अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो दु सायारो।। (674)

मति श्रुत अवधि और मनःपर्यय इनके द्वारा अपने-अपने विषय का अंतर्मुहूर्तकाल पर्यंत जो विशेष ज्ञान होता है उसको ही साकार उपयोग कहते हैं।

अनाकार उपयोग का स्वरूप-

इंदियमणोहिणा वा, अत्थे अविसेसिदूण जे गहणं।
अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो अणायारो।। (675)

इन्द्रिय, मन और अवधि के द्वारा अंतर्मुहूर्तकाल तक पदार्थों का जो सामान्य रूप ग्रहण होता है उसको निराकार उपयोग कहते हैं। दर्शन के चार भेद हैं-चक्षुदर्शन,

अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। इनमें से आदि के तीन दर्शन छद्मस्थ जीवों के होते हैं। नेत्र के द्वारा जो सामान्यावलोकन होता है उसको चक्षुदर्शन कहते हैं और नेत्र को छोड़कर शेष चार इन्द्रिय तथा मन के द्वारा जो सामान्यावलोकन होता है उसको अचक्षुदर्शन कहते हैं। अवधि ज्ञान के पहले इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मामात्र से जो रूपी पदार्थ विषयक सामान्यावलोकन होता है उसको अवधिदर्शन कहते हैं। दर्शनरूप निराकार उपयोग भी साकार उपयोग की तरह छद्मस्थ जीवों के अधिक से अधिक अंतर्मुहूर्त तक होता है।

अनाकार उपयोग या दर्शन उपयोग का वर्णन प्रकारान्तर से गोम्मट्टसार में निम्न प्रकार से पाया जाता है -

भावाणं सामण्ण विसेसयाणं सरूवमेत्तं जं।
वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि।। (483)

निर्विकल्परूप से जीव से जीव के द्वारा जो सामान्य विशेषात्मक पदार्थों की स्व-पर सत्ता का अवभासन होता है उसको दर्शन कहते हैं।

पदार्थों में सामान्य विशेष दोनों ही धर्म रहते हैं; किन्तु इनके केवल सामान्य धर्म की अपेक्षा से जो स्व-पर सत्ता का अवभासन होता है उसको 'दर्शन' कहते हैं। इसका शब्दों द्वारा प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। इसके चार भेद हैं-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन।

चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन का स्वरूप-

चक्खूण जं पयासइ दिस्सइ तं चक्खुदंसणं वेंति।
सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खूत्ति।। (484)

जो पदार्थ चक्षुरिन्द्रिय का विषय है उसका देखना, अथवा वह जिसके द्वारा देखा जाय, अथवा उसके देखने वाले को 'चक्षुदर्शन' कहते हैं और चक्षु के सिवाय दूसरी चार इन्द्रियों के अथवा मन के द्वारा जो अपने-अपने विषयभूत पदार्थ का सामान्य ग्रहण होता है उसको 'अचक्षुदर्शन' कहते हैं।

अवधिदर्शन का स्वरूप-

परमाणु आदियाइं अंतिमखंधं ति मुत्तिदव्वाइं।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइं पचक्खं।। (485)

अवधिज्ञान होने के पूर्व समय में अवधि के विषयभूत परमाणु से लेकर महास्कन्धपर्यंत मूर्तद्रव्य को जो सामान्य रूप से देखता है उसको 'अवधिदर्शन' कहते हैं। इस अवधि दर्शन के अनन्तर प्रत्यक्ष अवधि ज्ञान होता है।

केवल दर्शन का स्वरूप-

बहुविहबहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि।

लोगालोगवितिमिरो जो केवलदंसणुज्जोओ।। (485)

तीव्र-मंद-मध्यम आदि अनेक अवस्थाओं की अपेक्षा तथा चन्द्र, सूर्य आदि पदार्थों की अपेक्षा अनेक प्रकार के प्रकाश जगत् में परिमित क्षेत्र में रहते हैं; किन्तु जो लोक और अलोक दोनों जगह प्रकाश करता है, ऐसे प्रकाश को 'केवल दर्शन' कहते हैं।

समस्त पदार्थों का जो सामान्य दर्शन होता है उसको 'केवलदर्शन' कहते हैं।

जीव के भेद

संसारिणो मुक्ताश्च।। (10)

They are of 2 kinds :

संसारी Mundane and मुक्त Liberated Souls

जीव दो प्रकार के है-संसारी और मुक्त।

वस्तुतः जीव द्रव्य एक प्रकार का होते हुए भी कर्म सहित एवं कर्म रहित की अपेक्षा जीव दो प्रकार के हो जाते हैं। कर्म सहित जीव संसारी है तथा कर्म रहित जीव मुक्त है। कहा भी है-

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा।। (109)

उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा।। (प.का.पृ. 280)

जीव दो प्रकार के हैं- (1) संसारी अर्थात् अशुद्ध और (2) सिद्ध अर्थात् शुद्ध। वे दोनों वास्तव में चेतना स्वभाव वाले हैं और चेतना परिणामस्वरूप उपयोग द्वारा लक्षित होने योग्य है। उसमें संसारी जीव देह में वर्तने वाले अर्थात् देह सहित है और सिद्ध जीव देह में न वर्तने वाले अर्थात् देह रहित है।

.......मिच्छादंसणकसायजोगजुदा।

विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा।। (32)

मिथ्यादर्शन-कषाय योग सहित संसारी है और अनेक मिथ्यादर्शन-कषाय योग

रहित सिद्ध है।

संसारी जीवों के भेद

समनस्कामनस्काः। (11)

The mudane souls are of 2 kinds :

समनस्क Rational, thouse who have a mind, i.e. the faculty of distigushing right and wrong.

मन सहित तथा मन रहित ऐसे संसारी जीव हैं।

मन सहित जीव को समनस्क (सैनी) कहते हैं और मन रहित जीव को अमनस्क (असैनी) कहते हैं। एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक जीव असैन होते हैं एवं मन सहित पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी होते हैं। इन दोनों में से संज्ञी जीव श्रेष्ठ है क्योंकि संज्ञी जीव गुण और दोषों का विचारक होता है। अमनस्क जीव मन रहित होने के कारण गुण-दोषों की समीक्षा नहीं कर पाता है। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान होते हुए भी मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान, कुज्ञान के साथ-साथ बहुत ही अविकसित ज्ञान है, इतना ही नहीं असंज्ञी जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता भी नहीं रखता है। संज्ञी जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता रखता है। मन दो प्रकार का है (1) द्रव्य मन, (2) भाव मन।

उनमें से द्रव्य मन पुद्गलविपाकी आंगोपांग नाम कर्म के उदय से होता है तथा वीर्यांतराय और नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा रखने वाले आत्मा की विशुद्धि को भाव मन कहते हैं। यह मन जिन जीवों के पाया जाता है वे 'समनस्क' है और जिनके मन नहीं पाया जाता है वे 'अमनस्क' है। इस प्रकार मन के सद्भाव और असद्भाव की अपेक्षा संसारी जीव दो भागों में बँट जाता है।

द्रव्य मन का स्वरूप

हिदि होदि हु दव्वमणं वियसियअट्ठच्छदारविंदं वा।

अङ्गोवंगुदयादो मणवग्गणखंधदो णियमा।। (443)

अङ्गोपाङ्गनाम कर्म के उदय से मनोवर्गणा के स्कन्धों के द्वारा हृदय स्थान में नियम से विकसित आठ पांखुड़ी के कमल के आकार में द्रव्य मन उत्पन्न होता है।

णोइंदियत्ति सण्णा तस्स हवे सेसइंदियाणं वा।

वत्तत्ताभावादो....।। (444)

इस द्रव्य मन की नो इन्द्रिय संज्ञा भी है, क्योंकि दूसरी इन्द्रियों की तरह यह व्यक्त नहीं है। (गोम्मट्टसार, पृ. 163)

संसारी जीवों के अन्य प्रकार से भेद

संसारिणस्त्रसस्थावराः।। (12)

The mundane souls (are of 2 kinds from another point of view).

त्रस Mobile many sensed, i.e. having a body with more than one Sense.

स्थावर Immobile, one sensed, i.e. having a only the sense of touch

तथा संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के हैं।

कर्म सहित जीवों को संसारी जीव कहते हैं। इस दृष्टि से समस्त संसारी जीव एक होते हुए भी विभिन्न कर्मों के कारण भेद-प्रभेद हो जाते हैं। इसके मुख्यतः दो भेद है- (1) त्रस जीव (2) स्थावर जीव।

त्रस नाम कर्म के उदय से दो इन्द्रिय से लेकर अयोग केवली तक के जीव को त्रस कहते हैं।

स्थावर नाम कर्म के उदय से पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक जीव को स्थावर जीव कहते हैं। अग्निकायिक, जलकायिक और वायुकायिक जीव गमन करते हुए पाये जाते हैं तो भी वे त्रस नहीं है। परन्तु उपचार से उनको कुछ शास्त्र में त्रस कहा गया है। संसारी जीवों का वर्णन द्रव्य संग्रह में निम्न प्रकार से किया गया है -

पुढविजलतेयवाऊ वणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी।। (11)

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति इन भेदों से नाना प्रकार के स्थावर जीव हैं और ये सब एक स्पर्शन इन्द्रिय के ही धारक हैं तथा शंख आदिक दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रियों के धारक त्रस जीव होते हैं।

समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य।। (12)

पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञी ऐसे दो प्रकार के जानने चाहिए और दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये सब मन रहित (असंज्ञी) है, एकेन्द्रिय बादर और सूक्ष्म दो प्रकार का है और ये पूर्वोक्त सातों पर्याप्त तथा अपर्याप्त हैं, ऐसे 14 जीव समास हैं।

जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से रहित है, अनंतसुखरूपी अमृत के अनुभव करने वाले शांतिमय है, नवीन कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्मरूपी अंजन से रहित है, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु, ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रगट हो चुके हैं, कृतकत्य हैं-जिनको कोई कार्य करना बाकी न रहा है, लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले हैं, उनको सिद्ध कहते हैं।

औपशमिकादिभव्यत्वानां च। (3)

There is also non existence भाव or thought activity due to the operation, subsidence and to the destruction subsidence and operation of the Karma and of भव्यत्व (i.e. the capacity of becoming liberated).

औपशमिक आदि भावों और भव्यत्व भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है।

भव्यत्व का ग्रहण अन्य पारिणामिक भावों की अनिवृत्ति के लिए है। पारिणामिक भावों में जीवत्व भाव की मोक्ष में अनिवृत्ति के लिए भव्यत्व भाव का ग्रहण किया गया है। अतः पारिणामिक भावों में भव्यत्व तथा औपशमिकादि भावों का अभाव भी मोक्ष में हो जाता है।

सम्पूर्ण द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म के अभाव से, कर्म से जायमान औपशमिक, क्षयोपशमिक, औदयिक भाव पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। औपशमिक, क्षयोपशमिक और औदयिक भावों का वर्णन तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में सविस्तार से किया गया है। केवल इन भावों का ही अभाव नहीं होता है इसके साथ भव्यत्व भाव का भी अभाव हो जाता है। भव्यत्व भाव को आगम में कुछ स्थान में पारिणामिक भी कहा है। आगमानुसार पारिणामिक भाव का अभाव नहीं होता है। क्योंकि पारिणामिक भाव उसे कहते हैं जो कर्म के उदय, उपशम, क्षयोपशम एवं क्षय की अपेक्षा नहीं रखता हो। तब प्रश्न होता है कि भव्यत्व, पारिणामिक भाव होकर मोक्ष में क्यों नहीं रहता है? तब इसका उत्तर वीरसेन

स्वामी ने धवला में आगमोक्त व तार्क्कि शैली से किया है। उनका तर्क यह है कि भव्यत्व भाव पूर्ण शुद्ध पारिणामिक भाव नहीं है कथञ्चित् कर्मजनित है और कथञ्चित् कर्म निरपेक्ष है। भव्य उसे कहते हैं जो भावी भगवान् है अथवा जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण करने की योग्यता रखता है। मिथ्यात्वादि कर्म के उदय से जीव सम्यरत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर पाता है इसलिये अभव्यत्व भाव कर्म सापेक्ष है। इसी प्रकार मिथ्यात्वादि कर्म के क्षय, उपशम, क्षयोपशम के निमित्त से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है इस अपेक्षा से भव्यत्व भाव भी कर्म सापेक्ष है।

सिद्ध अवस्था में सम्पूर्ण कर्म का अभाव होने से, तथा भव्य और अभव्यत्व की शक्ति या व्यक्ति की योग्यता के अभाव से सिद्ध जीव भव्य, अभव्य व्यपदेश से रहित होते हैं।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः। (4)

Otherwise there remain सम्यक्त्व perfect right belief ज्ञान perfect right knowledge दर्शन perfect conation and सिद्धत्व the state of having accomplished all

केवलसम्यक्त्व, केवलज्ञान और सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता।

कर्मबंधन से रहित होने के बाद जीव के सम्पूर्ण वैभाविक भाव नष्ट हो जाते है क्योंकि वैभाविक भाव के निमित्तभूत कारणों का अभाव हो जाता है। वैभाविक भाव के नष्ट होने पर स्वाभाविक भाव नष्ट नहीं होते परन्तु स्वाभाविक भाव पूर्ण शुद्ध रूप में प्रगट हो जाते हैं। तत्त्वार्थसार में कहा भी है -

ज्ञानावरणहानात्ते केवलज्ञानशालिनः।
दर्शनावरणच्छेदादुद्यत्केवलदर्शनाः।।(37)
वेदनीयसमुच्छेदादव्याबाधत्वमाश्रिताः।
मोहनीयसमुच्छेदात्सम्यक्त्वमचलं श्रिताः।। (38)
आयुः कर्मसमुच्छेदादवगाहनशालिनः।
नामकर्मसमुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।। (39)
गोत्रकर्मसमुच्छेदात्सदाऽगौरवलाघवाः।
अन्तरायसमुच्छेदादनन्तवीर्यामाश्रिताः।। (40)

ये सिद्ध भगवान् ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते हैं, दर्शनावरण कर्म का क्षय होने से केवलदर्शन से सहित होते हैं, वेदनीय कर्म का क्षय होने से अव्यबाधत्व गुण को प्राप्त होते हैं, मोहनीय कर्म का विनाश होने से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते है, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नामकर्म का उच्छेद होने से सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त हैं, गोत्रकर्म का विनाश होने से सदा अगुरुलघु गुण से सहित होते हैं और अन्तराय का नाश होने से अनंत वीर्य को प्राप्त होते हैं।

सिद्धों की अन्य विशेषता-

तादाम्याादुपयुक्तास्ते केवलज्ञानदर्शने।
सम्यक्त्वसिद्धतावस्था हेत्वभावाच्च निःक्रियाः।। (43)

वे सिद्ध भगवान् तादात्म्य सम्बन्ध होने के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन के विषय में सदा उपयुक्त रहते हैं तथा सम्यक्त्व और सिद्धता अवस्था को प्राप्त हैं। हेतु का अभाव होने से वे निः क्रिया-क्रिया से रहित हैं।

सिद्धों के सुख का वर्णन-

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।। (45) (तत्त्वार्थसार)

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध तथा परमोत्कृष्ट है ऐसा परम ऋषियों ने कहा है।

शरीर रहित सिद्धों के सुख किस प्रकार हो सकता है?

स्यादेतदशरीरस्य जन्तोर्नष्टाष्टकर्मणः।
कथं भवति मुक्तस्य सुखमित्युत्तरं श्रृणु।। (46)
लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्दः प्रयुज्यते।
विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एवं च।। (47)
सुखो वह्निः सुखो वायुर्विषयेष्विह कथ्यते।
दुःखाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते।। (48)
पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम्।
कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम्।। (49)

यदि कोई यह प्रश्न करे कि शरीर रहित एवं अष्टकर्मों को नष्ट करने वाले मुक्त जीव के सुख कैसे हो सकता है तो उसका उत्तर यह है, सुनो। इस लोक में विषय, वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष इन चार अर्थों में सुख शब्द कहा जाता है। अग्नि सुख रूप है, वायु सुख रूप है, यहाँ विषय अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। दुःख का अभाव होने पर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ यहाँ वेदना के अभाव में सुख शब्द प्रयुक्त हुआ है। पुण्य कर्म के उदय से इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों से उत्पन्न हुआ सुख होता है। यहाँ विपाक-कर्मोदय में सुख शब्द का प्रयोग है और कर्मजन्य क्लेश से छुटकारा मिलने से मोक्ष में उत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्ष अर्थ में सुख का प्रयोग है।

मुक्त जीवों का सुख सुषुप्त अवस्था के समान नहीं है।

सुषुप्तावस्थया तुल्यां केचिदिच्छन्ति निर्वृतिम्।
तदयुक्तं क्रियावत्त्वात्सुखातिशयतस्तथा।। (50)
श्रमक्लेममदव्याधिमदनेभ्यश्च संभवात्।
मोहोत्पत्तिर्विपाकाच्च दर्शनध्नस्य कर्मणः।। (51)

कोई कहते हैं कि निर्वाण सुषुप्त अवस्था के तुल्य है परन्तु उनका वैसा कहना अयुक्त है-ठीक नहीं है क्योंकि मुक्त जीव क्रियावान् है जबकि सुषुप्तावस्था में कोई क्रिया नहीं होती तथा मुक्त जीव के सुख की अधिकता है जबकि सुषुप्त अवस्था में सुख का रंचमात्र भी अनुभव नहीं होता। सुषुप्तावस्था की उत्पत्ति श्रम, खेद, नशा, बीमारी और कामसेवन से होती है तथा उसमें दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से मोह की उत्पत्ति होती है जबकि मुक्त जीव के यह सब संभव नहीं है।

मुक्त जीव का सुख निरूपम है।

लोकेतत्सदृशो ह्यर्थः कृत्स्नेऽप्यन्यो न विद्यते।
उपमीयेत तद्येन तस्मान्निरूपमं स्मृतम्।। (52)
लिङ्गप्रसिद्धेः प्रामाण्यमनुमानोपमानयोः।
अलिङ्गं चाप्रसिद्धं यत्तेनानुपमं स्मृतम्।। (53)

समस्त संसार में उसके समान अन्य पदार्थ नहीं है जिससे कि मुक्त जीवों के सुख की उपमा दी जा सके, इसलिए वह निरूपम माना गया है। लिङ्ग अर्थात् हेतु से अनुमान में और प्रसिद्धि से उपमान में प्रामाणिकता आती है परन्तु मुक्त जीवों का सुख

अलिङ्ग है-हेतु रहित है तथा अप्रसिद्ध है इसलिये वह अनुमान और उपमान प्रमाण का विषय न होकर अनुपम माना गया है।

अर्हंत भगवान् की आज्ञा से मुक्त जीवों का सुख माना जाता है।

प्रत्यक्षं तभ्दगवतामर्हतां तैः प्रभाषितम्।

गृह्यतेऽस्तीत्यतः प्राज्ञैर्न च छद्मस्थपरीक्षया।। (54)

मुक्त जीवों का वह सुख अर्हंत भगवान के प्रत्यक्ष है तथा उन्हीं के द्वारा उसका कथन किया गया है इसलिये 'वह है' इस तरह विद्वज्जनों के द्वारा स्वीकृत किया जाता है, अज्ञानी जीवों की परीक्षा से वह स्वीकृत नहीं किया जाता।

कुन्दकुन्द देव ने पंचास्तिकाय में कहा भी है, सिद्धत्व अवस्था में जीव के स्वाभाविक गुणों का अभाव नहीं होता है, परन्तु स्वाभाविक गुण पूर्ण शुद्ध रूप से पूर्ण विकसित होकर अनंत काल तक विद्यमान रहते हैं। यथा-

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।

ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा।। (35) (पृ. 128)

सिद्धों के वास्तव में द्रव्यप्राण के धारण स्वरूप से जीव स्वभाव मुख्य रूप से नहीं है, जीव स्वभाव का सर्वथा अभाव भी नहीं है, क्योंकि भावप्राण के धारण स्वरूप जीव स्वभाव का मुख्य रूप से सद्भाव है और उन्हें शरीर के साथ नीरक्षीर की भाँति एकरूप वृत्ति नहीं है, क्योंकि शरीर संयोग के हेतु भूत कषाय और योग का वियोग हो गया है इसलिये वे अतीत अनन्तर शरीर प्रमाण अवगाह रूप परिणत होने पर भी अत्यन्त देह रहित हैं और वचनगोचरातीत उनकी महिमा है, क्योंकि लौकिक प्राण के धारण बिना और शरीर के सम्बन्ध बिना सम्पूर्ण रूप से प्राप्त किये हुए निरूपाधि स्वरूप के द्वारा वे सतत् प्रतपते हैं।

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य।

पप्पोदि सुहमणंतं अव्वाबाधं सगममुत्तं।। (पृष्ठ नं. 114)

वह चेतयिता (आत्मा) सर्वज्ञ और सर्वलोकदर्शी स्वयं होता हुआ, स्वकीय अमूर्त अव्याबाध अनंत सुख को प्राप्त करता है।

जं जस्स दु संठाणं चरिमसरीरस्स जोगजहणम्मि।

तं संठाणं तस्स दु जीवघणो होई सिद्धस्स।। (2129)

दसविधपाणाभावो कम्माभावेण होइ अच्चंतं।

अच्चंतिगो य सुहदुक्खाभावो विगददेहस्स।। (2130)

मन वचन काययोगों का त्याग करते समय अयोगी गुणस्थान में जैसा अंतिम शरीर का आकार रहता है उस आकार रूप जीव के प्रदेशों का, घनरूप सिद्धों का आकार होता है।

सिद्ध भगवान् के कर्मों का अभाव होने से दस प्रकार के प्राणों का सर्वथा अभाव है तथा शरीर का अभाव होने से इन्द्रिय जनित सुख-दुःख का अभाव है।

जं णत्थिं बंधहेदुं देहग्गहणं ण तस्स तेण पुणो।

कम्मकलुसो हु जीवो कम्मकदं देहमादियदि।। (2131)

मुक्त जीव के कर्मबंध का कारण नहीं है। अतः वह पुनः शरीर धारण नहीं करता। क्योंकि कर्मों से बद्ध जीव ही कर्मकृत शरीर को धारण करता है।

कज्जाभावेण पुणो अच्चंत्तं णत्थि फंदणं तस्स।

ण पओगदो वि फंदणमदेहिणो अत्थि सिद्धस्स।। (2132)

सिद्ध जीवों के कुछ करना शेष न होने से उनमें हलन-चलन का अत्यन्त अभाव है और वे शरीर रहित है। अतः वायु आदि के प्रयोग से भी उनमें हलन-चलन नहीं होता।

कालमणंतमधम्मोपग्गहिदो ठादि गयणमोगाढ़ो।

सो उवकारो इट्ठो ठिदिसभावो ण जीवाणं।। (2133)

सिद्ध जीव जो अनंत काल तक आकाश के प्रदेशों को अवगाहित करके ठहरा रहता है सो यह अवस्थान रूप उपकार अधर्मास्तिकाय का माना गया है; क्योंकि जैसे जीव का स्वभाव चैतन्य आदि है उस प्रकार जीव का स्वभाव स्थिति नहीं है।

तेलोक्कमत्थयत्थो तो सो सिद्धो जगं णिरवसेसं।

सव्वेहिं पज्जएहिं य संपुण्णं सव्वदव्वेहिं।। (2134)

पस्सदि जाणदि य तहा तिण्णि वि काले सपज्जए सव्वे।

तह वा लोगमसेसं पस्सदि भयवं विगदमोहो।। (2135)

तीनों लोकों के मस्तक पर विराजमान वह सिद्ध परमेष्ठी समस्त द्रव्यों और समस्त पर्यायों से सम्पूर्ण जगत् को जानते-देखते हैं तथा वे मोह रहित भगवान् पर्यायो से

सहित तीनों कालों को और समस्त अलोक को जानते हैं।

भावे सगविसयत्थे सूरो जुगवं जहा पयासेइ।

सव्वं वितधा जुगवं केवलणाणं पयासेदि।। (2136)

जैसे सूर्य अपने विषयगोचर सब पदार्थों को एक साथ प्रकाशित करता है वैसे ही केवल ज्ञान सब पदार्थों को एक साथ प्रकाशित करता है।

कर्मों का क्षय होने के बाद

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्। (5)

After that (liberation from all Karmas the liberated souls go up wards (right vertically) to the end of लोक (or the universe.)

तदनन्तर मुक्त जीव लोक के अंत तक ऊपर जाता है।

जीव की स्वाभाविक गति का प्रतिपादन करते हुए आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती द्रव्यों के विभिन्न पहलुओं का संक्षिप्त एवं सारगर्भित प्रतिपादक ग्रंथ द्रव्य संग्रह शास्त्र में उल्लेख करते हैं कि ''विस्ससोड्ढगई'' अर्थात् जीव की स्वाभाविक गति ऊर्ध्वगमन स्वरूप है। अमृतचन्द्र सूरि तत्त्वार्थसार में जीव एवं पुद्गल के स्वभाव का वर्णन करते हुए उल्लेख करते हैं कि -

ऊर्ध्व गौरव धर्माणो जीवो इति जिनोत्तमैः।

अधोगौरव धर्माणः पुद्गला इति चोदितम्।।

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिनेन्द्र भगवान् ने जीव को ऊर्ध्व गौरव (ऊर्ध्व गुरुत्व) धर्म वाला बताया है और पुद्गल को अधोगौरव (अधो गुरुत्व) धर्म वाला प्रतिपादित किया है।

जीव की स्वाभाविक गति ऊर्ध्व से ऊर्ध्व गमन करने की है। पुद्गल की स्वाभाविक गति नीचे से नीचे की ओर है। कारण यह है कि जीव (matter) के अमूर्तिक (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, वजन से रहित) एवं स्वाथानान्तरित रूप गति क्रिया-शक्ति युक्त होने के कारण उसकी गति ऊर्ध्व गमन होना स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ; हाइड्रोजन गैस लीजिए। हाइड्रोजन गैस से भरे हुए बैलून को मुक्त करने पर वह बैलून धीरे-धीरे ऊपर ही गमन करता रहता है। यदि वह बैलून किसी कारणवश फटा नहीं तो वह गति करते-करते उस ऊँचाई तक पहुँचेगा जहाँ तक में हाइड्रोजन गैस है। साधारण

हवा से 14 गुना हल्की हाइड्रोजन होती है। जब हाइड्रोजन हवा से 14 गुना हल्की होने के कारण वह बैलून ऊपर ही ऊपर उड़ता है, तो शुद्ध जीव का, जो पूर्णतः वजन (भार) शून्य है, ऊपर गमन करना स्वाभाविक है। पुद्गल में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, भारादि के साथ-साथ स्थानान्तरित गति शक्ति युक्त होने से पुद्गल का अधोगौरव स्वभाव होना भी स्वाभाविक है। यहां पर जिज्ञासा होना स्वाभाविक जीव की गति ऊर्ध्व गमन स्वरूप है तो यह संसारी जीव विभिन्न प्रकार की वक्रादि गति से विश्व के विभिन्न भाव में क्यों परिभ्रमण करता है?

इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए अमृतचन्द्र सूरि बताते हैं कि-

अधस्तिर्यक् तयोर्ध्वं च जीवानां कर्मजा गतिः।
ऊर्ध्वमेक स्वभावेन भवति क्षीण कर्मणाम्।।

जीव की संसार अवस्था में जो विभिन्न गति होती है, वह स्वाभाविक गति नहीं है। जीव की संसारावस्था में अधोगति, तिर्यक्गति, ऊर्ध्वगति का कारण कर्मजनित है। सम्पूर्ण कर्म से रहित जीव की केवल एक स्वाभाविक ऊर्ध्वगति ही होती है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन के गति सम्बन्धी प्रथम सिद्धांत के अनुसार-

"A body at rest will remain at rest and a body moving with uniform velocity in a straight line will continue to do so unless an external force is applied to it."

अर्थात् एक द्रव्य, जो विराम अवस्था में है, वह विराम अवस्था में रहेगा तथा एक द्रव्य जो सीधी रेखा में गतिशील है, वह गतिशील ही रहेगा, जब तक उस द्रव्य की अवस्था में परिवर्तन करने के लिए कोई बाह्य बल न लगाया जाए। एक द्रव्य तब तक स्थिर रहता है जब तक बाह्य शक्ति का प्रयोग उसके गतिशील कराने में नहीं होता है तथा एक द्रव्य अविराम गति से एक सीधी रेखा में तब तक चलता रहता है, जब तक उस पर किसी बाह्य शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ता है।

कोई भी द्रव्य यदि किसी एक दिक् की ओर गति करता है, तो वह द्रव्य उस दिक् में अनंत काल तक अविराम, अपरिवर्तित गति से गति करता रहेगा, जब तक कोई विरोधी शक्ति या द्रव्य उस गति का निरोध नहीं करेगा। दिक् अनंत काल एवम् शक्ति अक्षय होने से, जिस दिक् में एक द्रव्य गति करता है, वह द्रव्य उस दिक् के अनंत

आकाश की ओर अनंत काल तक गति करता ही रहता है, परन्तु केन्द्राकर्षण शक्ति, बाह्य भौतिक या जैविक आदि विरोध शक्ति के कारण उस गति में परिवर्तन आ जाता है। जैसे एक गेंद को यदि ऊर्ध्व दिक् में फेंकते है तो वह कुछ समय के पश्चात् नीचे गिर जाती है। इसका कारण यह है कि गेंद को ऊपर फेंकने के लिए जो शक्ति प्रयोग की गई थी, उससे वह ऊपर की ओर उठी थी, परन्तु पृथ्वी की केन्द्राकर्षण शक्ति के कारण उसमें परिवर्तन आया और कुछ समय के बाद उस गेंद की ऊर्ध्व गति में परिवर्तन होकर अधोगति हो गई।

एक अन्य उदाहरण-खेत से पक्षी उड़ाने वाले रस्सी के एक यंत्र विशेष में पत्थर आदि रखकर रस्सी के दोनों छोरों को पकड़कर अपनी ओर घुमाते हैं। रस्सी के साथ-साथ पत्थर भी घूमता रहता है। कुछ समय के बाद रस्सी के एक छोर को छोड़ देते हैं जिससे वह पत्थर छूटकर सीधा दूर हो जाता है। जिस समय, वह व्यक्ति रस्सी के दोनों छोर पकड़कर घूम रहा था उस समय वह पत्थर उस व्यक्ति की घुमाव शक्ति से प्रेरित होकर आगे भागने का प्रयास करता था, परन्तु दोनों छोर को पकड़कर घुमाने के कारण पत्थर रस्सी के साथ-साथ वर्तुलाकार में घूमता रहता था। जब उस व्यक्ति ने रस्सी के एक छोर को छोड़ दिया तो वह पत्थर उस बंधन से मुक्त होकर आगे भागा। इसी प्रकार जीव की स्वाभाविक ऊर्ध्व गति होते हुए भी विरोधात्मक कर्म शक्ति से प्रेरित होकर कर्म संयुक्त संसारी जीव चतुर्गति रूपी संसार में परिभ्रमण कर रहा है, परन्तु जब वह कर्मबंधनों से मुक्त हो जाता है तब अन्य गतियों में से निवृत्त होकर स्वभाविक ऊर्ध्व गति से गमन करता है।

पयडि ट्ठिदि अणुभागप्पदेस बंधेहिं सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छसि सेसा विदिसा वज्जं गदिं जंति।।

प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध, प्रदेश बंध से सम्पूर्ण रूप से मुक्त होने के बाद परिशुद्ध स्वतंत्र शुद्धात्मा तिर्यक् आदि गतियों को छोड़कर ऊर्ध्व गमन करता है।

मुक्त जीव के ऊर्ध्वगमन के कारण

पूर्वप्रयोगादसंङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च। (6)

1. As the soul is previously implelled,
2. As it is free from ties or attachment,

3. As the bondage has been snapped and

4. As it is of the nature of dating up wards.

पूर्व प्रयोग से, संग का अभाव होने से, बंधन के टूटने से और वैसा गमन करना स्वभाव होने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है।

संसारी जीव ने मुक्त होने से पहले कितनी ही बार मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया है, अतः पूर्व का संस्कार होने से जीव ऊर्ध्वगमन करता है। जीव तब तक कर्मभार सहित रहता है तब तक संसार में बिना किसी नियम के गमन करता है और कर्मभार से रहित हो जाने पर ऊपर को ही गमन करता है। अन्य जन्म के कारणभूत गति जाति आदि समस्त कर्मबंध के उच्छेद हो जाने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है। आगम में जीव का स्वभाव ऊर्ध्वगमन करने वाला बताया है। अतः कर्म नष्ट हो जाने पर अपने स्वाभाविक अवस्था के कारण मुक्तात्मा का एक समय तक ऊर्ध्व गमन होता है।

उक्त चारों के कारणों के क्रम से चार दृष्टांत

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च। (7)

1. Like the potters wheel,
2. The gourd devoid mud,
3. The shell of the castor seed and
4. The flame of the candle.

घुमाये गये कुम्हार के चक्र के समान, लेप से मुक्त हुई तूमड़ी के समान एरण्ड के बीज के समान और अग्नि की शिखा के समान।

1. घुमाये हुए चक्र के समान- अपवर्ग की प्राप्ति के लिये बहुत बार प्रणिधान होने से हाथ घुमाये हुए चक्र के समान ऊर्ध्वगमन करता है। जैसे कुम्हार के प्रयोग से उसके हाथ का दण्ड से और दण्ड का चाक से संयोग होने पर चाक का भ्रमण होता है; परन्तु जब कुम्हार चाक पर दण्ड को घुमाना बंद भी कर देता है तब भी पूर्वप्रयोग के कारण संस्कारक्षय पर्यंत चक्र बराबर घूमता रहता है, उसी प्रकार संसारी आत्मा ने जो मोक्ष-प्राप्ति के लिए अनेक बार प्रणिधान और प्रयत्न किये हैं परन्तु अब मोक्ष-प्राप्ति के समय उद्योग के अभाव में भी उस संस्कार के आदेशपूर्वक पूर्व प्रयोग के कारण मुक्तात्मा का ऊर्ध्वगमन होता है।

2. मुक्त लेप वाली तूम्बड़ी के द्रव्य के समान-संग रहित होने से मुक्त लेप वाली तूम्बड़ी द्रव्य के समान मुक्तात्मा का ऊर्ध्वगमन होता है। जैसे मिट्टी के लेप से वजनदार तूम्बड़ी पानी में डूब जाती है और वही तूम्बड़ी ज्योंहि मिट्टी का लेप धूल जाता है तब शीघ्र ही पानी के ऊपर आ जाती है उसी प्रकार कर्मभार के आक्रांत से वशीकृत आत्मा, कर्मवश संसार में इधर-उधर भ्रमण करती है। उसका अधःपतन होता है पर जैसे ही वह कर्मबंधन से मुक्त होती है वैसे ही ऊपर आती है अर्थात् ऊर्ध्वगमन करती है।

3. एरण्ड के बीज के समान-बंध का उच्छेद हो जाने से एरण्ड के बीज के समान आत्मा ऊर्ध्वगमन करता है। जिस प्रकार ऊपर के छिलके के हटते ही एरण्ड के बीज की गति दृष्टिगोचर होती है अर्थात् छिलका हटते ही एरण्ड बीज ऊपर को ही जाता है उसी प्रकार मनुष्यादि भवों में भ्रमण कराने वाले गति नामकर्मादि सर्वकर्मों के बंध का छेद हो जाने से मुक्त जीव का स्वाभाविक ऊर्ध्व ही गमन होता है।

4. स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन-अथवा अग्नि की शिखा के समान, मुक्त जीव का स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन ही है। जैसे-तिरछी बहने वाली वायु के अभाव में प्रदीपशिखा स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करती है, उसी प्रकार मुक्तात्मा भी नाना गतिविकार के कारणभूत कर्म के हट जाने पर ऊर्ध्वगति स्वभाव से ऊपर को ही जाती है।

भगवती आराधना में कहा गया है-

तं सो बंधणमुक्को उड्ढं जीवो पओगदो जादि।
जह एरण्डयबीयं बंधणमुक्कं समुप्पददि।। (2121)

इस प्रकार बंधन से मुक्त हुआ वह जीव वेग से ऊपर हो जाता है जैसे बंधन से मुक्त हुआ एरण्ड का बीज ऊपर हो जाता है।

संगउ विजहणेण य लहुदयाए उड्ढं पयादि सो जीवो।
जल आलाउ अलेओ उप्पददि जले णिबुड्डो वि।। (2122)

समस्त कर्म नो कर्मरूप भार से मुक्त होने के कारण हल्का हो जाने से वह जीव ऊपर को जाता है। जैसे मिट्टी के लेप रहित तूम्बी जल में डूबने पर भी ऊपर ही जाती है।

झाणेण य तह अप्पा पओगदो जेण जादि सो उड्ढं।
वेगेण पूरिदो जह ठाइदुकामो वि य ण ठादि।। (2123)

जैसे वेग से पूर्ण व्यक्ति ठहरना चाहते हुए भी नहीं ठहर पाता है वैसे ही ध्यान के प्रयोग से आत्मा ऊपर को जाता है।

जह वा अग्गिस्स सिहा सहावदो चेव होहि उड्ढगदी।

जीवस्स तह सभावो उड्ढगमणमप्पवसियस्स।। (2124)

अथवा जैसे आग की लपट स्वभाव से ही ऊपर को जाती है वैसे ही कर्मरहित स्वाधीन आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगमन है।

तो सो अविग्गहाए गदीए समए अणंतरे चेव।

पावदि जयस्स सिहरं खित्तं कालेण य फुसंतो।। (2125)

कर्मों का क्षय होते ही वह मुक्त जीव एक समय वाली मोड़े रहित गति से सात राजू प्रमाण आकाश के प्रदेशों का स्पर्श न करते हुए अर्थात् अत्यन्त तीव्र वेग से लोक के शिखर पर विराजमान हो जाता है।

लोकाग्र के आगे नहीं जाने में कारण

धर्मास्तिकाया भावात्। (8)

But it does not rise higher than the extreme limit to लोक or the universe because (beyond it there is) the non existence of धर्मास्तिकाय or the medium of motion

धर्मास्तिकाय का अभाव होने से जीव लोकान्त से और ऊपर नहीं जाता।

समस्त कर्मबंधन से मुक्त होने के बाद सिद्ध जीव के अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व आदि अनंत गुण प्रगट हो जाते हैं। जीव की गति स्वाभाविक ऊर्ध्व गति होने के कारण एवं सम्पूर्ण कर्मबंधन से सिद्ध जीव मुक्त होने से यह गति पूर्ण रूप से स्वाभाविक रूप में प्रगट होती है। सिद्ध जीव की अनंत शक्ति होती है ऊर्ध्वाकाश अनंत होता है भविष्य काल भी अनंत होता है तब प्रश्न होता है सिद्ध जीव क्या अनंत काल तक अनंत आकाश में गमन करते रहते हैं? उस प्रश्न का उत्तर इस सूत्र में दिया गया है कि काल अनंत होते हुए शक्ति, अनंत होते हुए एवं ऊर्ध्वाकाश अनंत होते हुए भी सिद्ध जीव केवल एक समय में 7 राजू गमन करके लोकाग्र में स्थिर हो जाते हैं क्योंकि अलोकाकाश में ''गति माध्यम'' ''धर्म द्रव्य''

के अभाव में सिद्ध जीव अलोकाकाश में गमन नहीं करते हैं।

गत्युपग्रहकारण भूतो धर्मास्तिकायो नोपर्यस्तीत्यलोके गमनाभावः।

तद्भावे च लोकालोक विभागाभावः प्रसज्यते।।

गति के उपकार का कारणभूत धर्मास्तिकाय लोकान्त के ऊपर नहीं है, इसलिए मुक्त जीव का अलोक में गमन नहीं होता और यदि आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने पर भी अलोक में गमन माना जाता है तो लोकालोक के विभाग का अभाव प्राप्त होता है।

न धर्माभावतः सिद्धा गच्छन्ति परतस्ततः।

धर्मोहि सर्वदा कर्ता जीव पुद्गलयोर्गतेः।।

त्रैलोक्य के अंत तक धर्मास्तिकाय होने से सिद्ध जीवों की गति लोकान्त तक ही होती है। अलोक में जीव और पुद्गल के गति हेतु का अभाव होने से लोक के ऊपर गति नहीं होती।

जल रीछ दुनिया का शाश्वत जीव घोषित

वैज्ञानिकों का दावा है कि आठ पैरों वाला जीव जल रीछ (टार्डीग्रेड) सूर्य के खत्म होने तक अस्तित्व में रहेगा। इस जीव का विश्व का शाश्वत-जीव घोषित किया है। इंसानों की तुलना में जल रीछ कम-से-कम 10 लाख अरब साल अधिक अस्तित्व में रहेगा। यह जीव बिना भोजन-पानी के 30 वर्ष तक जीवित रह सकता है और 150 डिग्री सेल्सियस में भी रह सकता है। यह गहरे समुद्र में भी रह सकता है और अंतरिक्ष के निर्वात तक भी। जल में रहने वाला यह जीव 60 वर्ष तक जीवित रह सकता है। यह अन्य ग्रहों पर जीवन की संभावना को जगा देता है।

स्व-दोष दूर करने के विविध उपाय (अंतरंग तप)

- आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

सुनो हे! शिष्य तुम्हें बताऊँ स्व-दोष दूर हेतु नाना उपाय।
जिससे आत्मिक विशुद्धि द्वारा, होगा तुम्हारे सर्वोदय।।
रोगी यथा स्व-रोग दूर हेतु व स्वस्थ-सबल बनने हेतु।
सुयोग्य वैद्य से चिकित्सा कराता तथाहि तुम्हें भी स्व-विकास हेतु।(1)

आगम अनुभव गुरु के द्वारा, जब ज्ञात होते हैं स्व-दोष गुण।
आत्मविश्लेषण व आत्मालोचना (आत्मनिंदा) से योग्य गुरु से करो प्रायश्चित ग्रहण।।
क्रोध-मान-माया-लोभ से रहित, गुरु से करो स्व-दोष निवेदन।
विनम्रसत्यग्राही होकर प्रायश्चित लेकर करो स्व-दोष परिहरण।। (2)

स्व-दोष दूर करना ही है तप, जिससे होती है पापकर्म निर्जरा।
जिस से होती है आत्म-विशुद्धि आध्यात्मिक विकास होते सारा।।
बहिरंग तप तो बाह्य साधन जिससे साधने योग्य अंतरंग तप।
अंतरंग तप की उपलब्धि बिना, कार्यकारी नहीं बहिरंग तप।।(3)

अंतरंग तप में प्रथम भेद, होता है प्रायश्चित तप।
इसके बिना आगे के तप नहीं होते हैं कभी संभव।।
दोष सहित न विनय होता, तथाहि वैयावृत्त-स्वाध्याय।
व्युत्सर्ग तथा ध्यान न होते यथा वातादि त्रिदोष सह स्वास्थ्य।। (4)

तथाहि दोष दूर हेतु करो **विनय**, विनय से होता है **ज्ञान लाभ**।
ज्ञानलाभ हेतु **स्व का अध्ययन** करो, जिससे करो स्व-दोष दूर।।
ज्ञान सहित व विनय युक्त, करणीय तुम्हें **वैयावृत्य तप।**
इससे अहंकार व प्रमाद दूर होंगे, जिससे तुम में होगा **हल्कापन।।** (5)

इससे होगा व्युत्सर्ग तप, अहंकार-ममकार त्याग से।
इससे होगा तेरा मन-स्थिर, जिससे होगा ध्यान उत्तम।।
ध्यान से होते है दोष। (पाप, कर्म) नाश, ये है सर्वोत्तम उपाय।
अन्य भी हैं अनेक उपाय, अन्तरंग तप ही प्रमुख उपाय।। (6)

मनन-चिंतन व संयम धैर्य, दोष दूर हेतु अनिवार्य उपाय।
सभी उपायों को स्वीकार करो, ''सूरी कनक'' का तुम्हें आशीष।। (7)

ओबरी, दिनांक 11.01.2018, रात्रि 10:00

लाइफ मैनेजमेन्ट : जटिल चीजें समझना आसान करता है वातावरण

साइलेंस से बढ़ती है क्षमता, आती है ऊर्जा

चीन के विचारक और लेखक लाओ त्से ने कहा था- शांति और खामोशी बड़ी

ताकत हासिल करने का सबसे अच्छा जरिया है। अब हाल ही में हुई एक रिसर्च में भी यह बात सामने आई है कि शांत वातावरण में रहने से नर्वस सिस्टम दुरुस्त होता है। ऊर्जा बढ़ती है और दिमाग जटिल चीजों और वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया करने और इसमें एडजस्ट करने में अधिक सक्षम होता जाता है। ड्यूक मेडिकल स्कूल में हुए शोध में पता चला है कि शांत वातावरण दिमाग में नए सेल विकसित करने में मददगार होता है। संगीत और साइलेंस को लेकर एक शोध फिजिशियन लूसिआनो बेरनार्डी ने किया। उन्होंने पाया कि संगीत के बीच में अगर दो मिनट का साइलेंस आ जाए तो दिल और श्वसन प्रणाली के लिए बहुत अच्छा होता है। संगीत और साईलेंस का यूं भी अच्छा कॉम्बिनेशन है। तभी तो फ्रांस के प्रसिद्ध माइम एक्टर मार्सेल मराक्यू ने कहा था-संगीत और शांति आपस में मजबूती से जुड़े हैं। संगीत शांति देता है। जबकि एकदम शांत वातावरण में भी कहीं न कहीं संगीत मौजूद होता है। इससे विचार क्षमता, रचनात्मकता भी बेहतर होती है।

वर्क मैनेजमेन्ट : तनाव नहीं, इच्छा से होते हैं समय पर काम पूरे

इमर्जेंसी की ताकत है सेंस ऑफ अर्जेन्सी

जीवन के कुछ बड़े तनावों का सामना होता है, जब बहुत सारे कामों को एक साथ पूरा करना हो। ऐसे मौकों पर जरूरत होती है, कामों की तेजी से पूरा करने की। दूसरी तरफ कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम हम सब पूरे कर पाते हैं, जब सेंस ऑफ अर्जेन्सी से काम लेते हैं। असल में यह भी एक आदत और नैसर्गिक गुण की तरह ही होता है। सफल लोग सुबह जब उठते हैं तो उनमें कामों को भिड़कर पूरा करने की भावना होती है। वे काम पूरा करने के तनाव या बैचेनी के साथ दिन की शुरुआत नहीं करते। बल्कि उनमें काम को समय पर और जल्दी पूरा करने की इच्छा होती है। इसका दूसरा फायदा उन्हें यह होता है कि अचानक अगर नया काम आ जाए तो उसके लिए वे हमेशा तैयार रहते हैं। दरअसल सेंस ऑफ अर्जेन्सी आपको इमर्जेंसी के लिए तैयार कर देती है। जब आप अपने नियमित कामों को समय पर पूरा कर चुके होते हैं तो अचानक आने वाली परिस्थितियों और कामों के लिए बेहतर तरीके से सामना करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

सच्चे लोगों में होती हैं कई खूबियाँ

सच्चे लोग प्रतिस्पर्द्धा की परवाह नहीं करते

मनुष्य कई बार अजीबो-गरीब और खतरनाक खेल खेलते हैं। जीतने के फेर में कई बार वे अपनी जान की बाजी भी लगा देते हैं और कई बार ऐसे ट्रेंड्स फॉलो करते हैं, जो उनकी सेहत और प्रतिष्ठा के लिए नुकसानदायक साबित होते हैं। सच्चे लोग इस बात की परवाह नहीं करते कि वे दूसरों की नजरों में नाकाम साबित होंगे क्योंकि उनके लिए जीवन महत्त्वपूर्ण है, कॉम्पिटिशन नहीं। वे किसी के सामने कुछ साबित करने की कोशिश नहीं करते।

वे जानते हैं, अहम को शांत कब करना है

सच्चे व्यक्ति कभी प्यार की जगह नफरत और इज्जत के बदले धन को स्वीकार नहीं करते। वे अपने अहम को बढ़ावा देने के लिए किसी की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाते। जब उनका अहम सिर उठाता है, वे जानते हैं कि कैसे तर्क-संगत सोचते रहना है और उसे शांत करना है।

वे सकारात्मक सोच को सींचते हैं

जहाँ हम अपने जेहन में नकारात्मक सोच और अनुभवों को जमा करते रहते हैं, सच्चे लोग एक सकारात्मक सोच की खूबसूरती को सराहते हैं और उसे अपने से दूर नहीं होने देते। बेशक उन्हें भी नकारात्मक महसूस होती है लेकिन वे इसके बहाव में बह नहीं जाते। इससे जो सीख मिलती है, उसे अपनाते हैं और सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ जाते हैं।

नीचा दिखाने का मौका किसी को नहीं देते

अच्छे और सच्चे लोगों के जीवन में भी कोई ऐसा व्यक्ति जरूर होता है जो आपकी पॉजीटिव लाइफ को तबाह करने की कोशिश करता है। लेकिन सच्चे लोग उन्हें ऐसा करने का मौका नहीं देते। वे अपने जीवन में नुकसानदायक लोगों को जगह नहीं बनाने देते और उन्हें पूरी तरह से नजरअंदाज कर देते हैं।

इन्हें वर्चुएलिटी नहीं रिएलिटी पंसद होती है

सच्चे लोग सोशल मीडिया से शर्माते नहीं है लेकिन वे अपडेट पोस्ट करने, फीड

चेक करने या लाइक्स का इंतजार करने में घंटों नहीं बिताते। जब इन्हें खाली समय मिलता है तो ये अपने चहेते लोगों के साथ या किसी पार्क में बिताना ज्यादा पसंद करते हैं। आखिरकार वास्तविक दुनिया में जीना ही सच्चाई है।

अक्स पसंद करते हैं अपना

सच्चे लोग बखूबी जानते हैं कि कमियाँ और बुरी आदतें सभी में होती हैं। वे अपने प्राकृतिक रूप में बहुत ही सहज महसूस करते हैं और अपनी कमियों को छिपाने की कोशिश नहीं करते। वे कमियों को सुधारने के लिए प्रयास करते हैं लेकिन इसके लिए वे सीमाएँ पार नहीं करते। वे जो हर सुबह आईने में देखते हैं, उसे ही पसंद करते हैं।

सन्दर्भ–

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपसः परिवृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन् ध्यानद्वये ववृत्तिषेऽतिशयोपपन्ने।।8

(स्व. स्तोत्र)

(हे कुंथु जिनेन्द्र!) आपने आध्यात्मिक तप को बढ़ाने के लिए अत्यन्त दुश्चर बाह्य तप का आचरण किया और प्रारम्भ के दो मलिन ध्यानों को छोड़कर अतिशय को प्राप्त उत्तर के दो ध्यानों में प्रवृत्ति की।

बाह्य संज्ञा का कारण - कथमेदस्स बज्झसणा? अप्पणो पुधभूदेहि मिच्छाइट्ठीहि विणव्वदि त्ति बज्झसण्णा।

शंका - इसकी 'बाह्य' संज्ञा किस कारण से हैं?

समाधान - यह अपने पृथग्भूत मिथ्यादृष्टियों के द्वारा भी जाना जाता है, इसीलिए इसकी 'बाह्य' संज्ञा है।

अंतरंग तप

संपहि छव्विह अब्भंतर तव सरूव निरूवण कस्सामो।

छह प्रकार के आभ्यन्तर तप के स्वरूप का कथन करते हैं।

अंतरंग तप के भेद :-

प्रायश्चित-विनय-वैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।। 20 (त. सूत्र)

1) प्रायश्चित, 2) विनय, 3) वैयावृत्य, 4) स्वाध्याय, 5) व्युत्सर्ग और 6) ध्यान। ये छह प्रकार के आभ्यन्तर तप हैं।

1) कृत दोष शोधन (प्रायश्चित-चित्त शोधन) तप-कयावराहेण ससंवेय णिव्वेएण सगावराहणिरायणट्ठं जमणुट्ठाणं कीरदि तप्पायच्छित्तं णाम तवोकम्मं।

(ध. 13 पृ. 59)

संवेग और निर्वेद से युक्त अपराध करने वाला साधु अपने अपराध का निराकरण करने के लिए जो अनुष्ठान करता है वह प्रायश्चित नाम का तप कर्म है। इस विषय में श्लोक-

प्राय इत्युच्यते लोकश्चित्तं तस्य मनो भवेत्।
तच्चित्तग्राहकं कर्म प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्।।9

प्रायः यह पद लोकवाची है और चित्त से अभिप्राय इसके मन का है। इसलिए उस चित्त का ग्रहण करने वाला कर्म प्रायश्चित है, ऐसा समझना चाहिए।

जब एक मनुष्य से किसी प्रकार का दोष हो जाता है तो उस दोष के कारण उसका अन्तरात्मा मलिन, दूषित और अपवित्र हो जाती है। अन्तरात्मा के दूषित होने के साथ-साथ अन्य लोग भी उसके प्रति मलिन, अपवित्र मनोभाव को धारण करते हैं। इसी प्रकार दोषी अन्तर्लोक (आत्मा) और बहिर्लोक (बाह्य जनसाधारण) में दूषित हो जाता है। जब तक वह दोषी अपना दोष परिमार्जन नहीं करता है तब तक वह दोनों तरफ से मलिन होकर पतित हो जाता है। इससे उसका धैर्य, साहस, आत्मगौरव आदि नाश होने से उसकी आध्यात्मिक शक्ति क्षीण हो जाती है। उपरोक्त दोष से अपने को उद्धार करने के लिए वह दोषी यथायोग्य स्वसाक्षी, गुरुसाक्षी, परसाक्ष्य पूर्वक दोषानुकूल प्रायश्चित लेकर आत्मविशुद्धि करता है। आत्मविशुद्धि के अनन्तर उसकी अंतरात्मा निर्मल पवित्र हो जाने से उसका धैर्य, साहस, वीर्य, आत्मगौरव वृद्धिगत होता है जिससे उसकी आध्यात्मिक शक्ति वृद्धिगत होती है। दोष स्वीकार करके, दोष परिमार्जन करने से साधारण लोग भी उसकी प्रमाणिकता से प्रेरित होकर पहले जो दोषजनित दूषित भाव मन में था उसको निकाल फेंकते हैं। इसलिए प्रायश्चित से स्वशुद्धि के साथ-साथ लोगों की चित्तशुद्धि हो जाती है। इसलिए इसको प्रायश्चित तप कहते हैं।

प्रायश्चित के 10 भेद-तं च पायच्छित्तमालोचणा-प्पडिक्कमण-उभय-विवेग-विउसग्ग-तव-च्छेद-मूल-परिहार - स्वसद्दहणभेदेण दसविहं।

वह प्रायश्चित 1) आलोचना 2) प्रतिक्रमण 3) उभय 4) विवेक 5) व्युत्सर्ग

6) तप 7) छेद 8) मूल 9) परिहार 10) श्रद्धान के भेद से दस प्रकार का है। इस विषय में गाथा-

आलोयण पडिकमणे उभय-विवेगे तहा विउसग्गो।
तवछेदो मूलं पि परिहारो चेव सद्दहणा।।11

आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धान ये प्रायश्चित के भेद हैं।

i) स्वदोष प्रकाशन (आलोचना) प्रायश्चित :- गुरुणामपरिस्सवाणं सुदरहस्साणं वीयरायाणं तिरयणे मेरुव्व थिराणे सगदोषणिवेयणमालोयाणा णाम प्रायच्छित्तं।

अपरिस्राव अर्थात् आस्रव से रहित, श्रुत के रहस्य का जानने वाले, वीतराग और रत्नत्रय में मेरू के समान स्थिर ऐसे गुरुओं के सामने अपने दोषों का निवेदन करना आलोचना नाम का प्रायश्चित है।

ii) पश्चात्ताप (प्रतिक्रमण) प्रायश्चित :- गुरुणामालोचणाए विणा ससंवेग-णिव्वेयस्स पुणो ण करेमि त्ति जमवराहादो णियत्तणं पडिक्कमणं णाम पायच्छित्तं। एदं कत्थ होदि? अप्पावराहे गुरुहि विणा वट्टमाणाम्हि होदि।

गुरुओं के सामने आलोचना किये बिना संवेग और निर्वेद से युक्त साधु का 'फिर से कभी ऐसा न करुँगा' यह कहकर अपराध से निवृत्त होना प्रतिक्रमण नाम का प्रायश्चित है।

शंका - यह प्रतिक्रमण प्रायश्चित कहाँ पर होता है?

समाधान - जब अपराध छोटा सा हो और गुरु समीप न हो, तब यह प्राशचित होता है।

विश्व एवं काल अनादि है। इसलिए जीव भी अनादि काल से है। जीव के अनादि काल होने से कर्मबंध भी अनादिकालीन है। जीव में भी अनंत शक्ति है एवं जीव को बाँधने वाले कर्म में भी अनंत शक्ति है क्योंकि यदि कर्म में अनंत शक्ति नहीं होती है तो अनंत शक्ति सम्पन्न जीव को कर्म बाँध नहीं सकता है। अनादि काल से कर्म में बंधा हुआ, कर्म से रचा हुआ एवं कर्म से संस्कारित जीव के ऊपर कर्म का अनुशासन अनादिकाल से पड़ा हुआ है। उस कर्म की प्रेरणा शक्ति इतनी तीव्र है कि कभी-कभी भेद विज्ञान सम्पन्न आत्मसाधक महासत्त्व वाले अंतरात्मा मुनि को भी पदस्खलित, पथचलित

कर देती है। महान् तत्त्ववेत्ता, दार्शनिक संत पूज्यपाद स्वामी ने इस अभिप्राय को लेकर कहा है -

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रांतिं भूयोऽपि गच्छति।। 45 (समाधितंत्र)

अंतरात्मा आत्मत्त्व को जानती हुई भी तथा शरीर से भिन्न आत्मा की भावना करती हुई भी, मानती हुई भी फिर भी पुराने बहिरात्मावस्था के मिथ्यासंस्कार से शरीर को आत्मा समझ लेने के भ्रम को कर बैठती है।

आत्मसाधक अनिच्छापूर्वक कर्म की तीव्र शक्ति से घात-प्रतिघात को प्राप्त करके कदाचित्, कथञ्चित् स्वलक्ष्य मार्ग से स्खलित होने पर प्रमादी होकर नीचे पड़ा नहीं रहता है। वह पुनः नवचेतना, नवस्फूर्ति, नवशक्ति लेकर खड़ा हो जाता है। पदस्खलित के कारण वह अपना पश्चात्ताप स्वसाक्षी, परसाक्षी पूर्वक करता हुआ दोष का परिमार्जन करता है। त्रुटि होने पर त्रुटि को स्वीकार करना, पुनः त्रुटि नहीं होवें तदनुकूल सतत् पुरुषार्थ करना प्रतिक्रमण एवं प्रायश्चित है। इससे साधक को सरलता, आत्मविशुद्धि की भावना स्पष्ट व्यञ्जित होती है एवं पुष्ट होती है। इससे आत्मा की दुर्बलता नष्ट होती है एवं आत्मा दृढ़ हो जाता है। मनुष्य में उन्नति करने की जितनी प्रणालियाँ हैं उसमें सर्वप्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ प्रणाली है स्व-दोष स्वीकार करना, परिमार्जन करना एवं उस दोष को आगे नहीं होने देना है। प्रतिक्रमण एवं प्रायश्चित आदि से उसकी प्रामाणिकता अधिक से अधिक निखर उठती है। आत्मविश्वास के साथ-साथ यह लोक विश्वास का भी सम्पादन करता है।

वर्तमान मनोवैज्ञानिक चिकित्सक भी अनेक मानसिक एवं शारीरिक रोगों की चिकित्सा प्रतिक्रमण, प्रायश्चित, स्वदोष स्वीकार आदि से करते हैं। अनेक मानसिक एवं शारीरिक रोग मानसिक तनाव से उत्पन्न होते हैं। मानसिक तनाव का मूल कारण असत् आचरण, अनैतिक आचार-विचार, दूसरों के प्रति ईर्ष्या, घृणा, द्वेष के साथ-साथ प्रगट एवं अप्रगट रूप में दोषकर कार्य करना है। उपरोक्त कारण से मन में, अन्तः चेतना में, अवचेतन मन में एक प्रकार मानसिक असंतुलन, विक्षोभ उत्पन्न होकर मानसिक, भावात्मक ग्रंथि पड़ जाती है। ये ही मानसिक तनाव शारीरिक एवं मानसिक रोगों का कारण बन जाते हैं। जब तक आत्म विश्लेषण, आत्म निरीक्षण, स्वदोष स्वीकार,

पश्चात्ताप, निंदा, गर्हा नहीं किया जाता है तब तक मानसिक, भावानात्मक ग्रंथि, तनाव, मानसिक एवं शारीरिक रोग विभिन्न भौतिक एवं शारीरिक चिकित्सा से भी दूर नहीं हो सकते हैं। निंदा, गर्हा, पश्चात्ताप आदि के बिना केवल भौतिक एवं शारीरिक चिकित्सा से अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोग ठीक नहीं हो पाते हैं। इसका विशेष वर्णन मेरे द्वारा लिखित ''धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान'' के मनोवैज्ञानिक चिकित्सा प्रकरण में किया गया है। इसी प्रकार प्रतिक्रमण, प्रायश्चित आदि स्वकृत दोष निवारण के साथ-साथ दूसरे के विश्वास भाजन के साथ हि शारीरिक- मानसिक रोग निवारण के लिए अमोघ उपाय हैं।

आलोचना, गर्हा, आत्मनिंदा, व्रत, उपवास, स्तुति और कथाएँ इसके द्वारा प्रमाद को (असावधानी को) नाश करना चाहिए। जैसे - मंत्र, औषधि आदि से विष का वेग नाश किया जाता है।

जीवे प्रमाद जनिताः प्रचुरा प्रदोषा।
यस्मात् प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।।1 प्रतिक्रमण पाठ

प्रमाद (असावधान) वशतः जीवों के प्रति प्रचुर रूप से जो दोष होते हैं वे दोष प्रतिक्रमण के माध्यम से नष्ट हो जाते हैं। प्रतिक्रमण का अर्थ - कृत दोष को स्वीकार करना। कोई व्यक्ति, अन्याय, अनुचित, अनैतिक, अधार्मिक कार्य करते ही उसकी अन्तर्चेतना जान लेती है कि कुछ विपरीत व अप्राकृतिक कार्य हुआ है, इससे मानसिक शांति व सन्तुलन बिगड़ जाता है, जिससे शरीर का नाड़ीतंत्र व ग्रंथितंत्र प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। फलतः मानसिक अस्वस्थता हो जाती है। उस मानसिक अस्वस्थता के कारण शरीर भी अस्वस्थ हो जाता है। जब तक भूल का सुधार नहीं हो जाता तब तक यह मानसिक और शारीरिक अस्वस्थता बनी रहती है। भूल का सुधार होते ही रोगी स्वस्थ हो जाता है। पहले धर्मात्मा लोग दोष होने के बाद इसीलिए क्षमा-याचना करते थे।

खम्मामि सव्व जीवाणां सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि।। 3 प्रतिक्रमण पाठ

मैं सहृदय, सम्पूर्ण जीव-जगत् को क्षमा करता हूँ, सर्व जीव-जगत् मुझे भी क्षमा करें। सम्पूर्ण जीवों के प्रति मेरी मैत्री भावना है अर्थात् सम्पूर्ण जीव मेरे मित्र के समान हैं। किसी के प्रति भी मेरा वैर भाव नहीं है।

डीप थिंकिंग

क्या आप 10 मिनट गहराई से सोच सकते हैं?

गहराई से सोचना यानी हमारे पूर्वग्रह, पसन्द-नापसन्द से आगे जाकर सोचना। समस्या यह है कि हम केवल 10 सैकण्ड ही किसी विषय पर फोकस रख पाते हैं।

हम सब सोचते हैं लेकिन, सारे ही गहराई से नहीं सोचते। गहराई से सोचने का अर्थ है मन की कमजोरियों के परे जाकर सोचना। इस तरह से हम उपयोगी और मूल्यवान् विचारों की संख्या बढ़ा सकते हैं। मूल्यवान् विचारों की संख्या का आपके मूल्यवान् क्रिया-कलाप की गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

लोग आमतौर पर गहराई से नहीं सोचते, क्योंकि यह बहुत कठिन है। बात सिर्फ इतनी नहीं है कि असंख्य विचार और आइडिया आपके दिमाग के प्रोसेसर पर भारी पड़ सकते हैं। एक दूसरी मुश्किल भी है। एक आम मानव मस्तिष्क हर दस सेकंड में फोकस खो देता है। यदि आप किसी एक विषय पर सोचने का निर्णय लें तो आपको लगातार बार-बार रीफोकस करना होगा। इसीलिए सोच-विचार कठिन होता है। आपको हर दस सेकंड बाद जागरूक होकर देखना होगा कि आप तय किए विषय पर ही सोच रहे हैं या नहीं। यदि सतर्क नहीं रहें तो कुछ और सोचने लगेंगे। एक एक्सरसाइज आजमा सकते हैं। कोई ऐसी जगह चुनें जहाँ कोई व्यवधान न हो। फिर कोई महत्त्वपूर्ण विचार चुने, जिसके बारे में आप सोचना चाहते हैं। टाइम वॉच साथ रखें और उस विषय पर 10 मिनट तक लगातार सोचते रहे। चूँकि केन्द्रित रहने का समय हर व्यक्ति के लिए अलग होता हैं तो सफलता भी उसी पर निर्भर हैं।

यदि आप 10 सेकंड में फोकस खोने की औसत श्रेणी में आते हैं तो आप 60 बार सफलतापूर्वक रीफोकस करेंगे। जो आइडिया सामने आएंगे उन पर आपको अचरज होगा और यह भी अहसास होगा कि लगातार फोकस बनाए रखना कितना कठिन है।

उजाले की ओर

निष्पक्षता बुद्धिमानी की दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण है। आप जितने निष्पक्ष होंगे, उतने बुद्धिमान होते जाएंगे। **– पर्ल झु. डिजिटल विजनरी**

निष्पक्षता कोई एटीट्यूड नहीं है। यह तो पेशवर कौशल है, जिसे विकसित करके अमल में लाया जाना चाहिए। - ब्रिट ह्यूम, राजनीतिक टिप्पणीकार

खुद के पूर्वग्रहों से ऊपर उठने की व्यक्ति की योग्यता निष्पक्षता है।

- वेस फेसलर, फुटबॉल कोच

ऐसी जिंदगी जीएं कि जब आपके बच्चे निष्पक्षता, ईमानदारी, सच्चाई और दूसरों की परवाह करने जैसे गुणों की बात करें तो उन्हें आपका ही ध्यान आए।

- हेरियट जेकसन ब्राउन जूनियर, लेखक

संकट में चाहे बल रक्षा करें लेकिन, केवल न्याय, निष्पक्षता, सोच-विचार और सहयोग ही आखिरकार हमें शाश्वत शांति की सुबह की ओर ले जाते हैं।

- ड्वाइट आइजनहॉवर, पूर्व राष्ट्रपति, अमेरिका

इसी तरह तो हम भावी अर्थव्यवस्था निर्मित करते हैं। अधिक जॉब और कम कर्ज की इकोनॉमी की जड़ें निष्पक्षता में रखते हैं। इसे हम अवसरों से बढ़ाते हैं और सब मिलकर इसे गढ़ते हैं।

- एलिजाबेथ वॉरेन, राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद्

कोई देश कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, पूरी दुनिया पर शासन नहीं कर सकता। दुनिया पर बुद्धि, न्याय, नैतिकता और निष्पक्षता से शासन किया जा सकता है।

- अब्दुल्ला बिन अब्दुल अजीज, शाह, सऊदी अरब

आप जिस तरह से लोगों को देखते हैं, उसी तरह उनसे व्यवहार करते हैं और जिस तरह से उनके साथ व्यवहार करते हैं, उसी तरह वे हो जाते हैं।

- योहान वोल्फगंग वॉन गोथे, लेखक व राजनीतिज्ञ

जब तक आप खुद के साथ पक्षपात रहित व्यवहार नहीं कर पाते तब तक आप अपने आसपास के दूसरे लोगों के साथ निष्पक्षता का व्यवहार नहीं कर पाएंगे।

- वेरा नजारियन, साइंस फिक्शन लेखिका

सर्वोदय/(अन्त्योदय) नहीं है मानवकृत नीति-नियम

- आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

मानव कृत नीति-नियम.. नहीं होते हैं सर्वोदय[2]।
संकीर्ण स्वार्थ व विषमता युक्त... नहीं होते हैं अन्त्योदय[2]।।

निरतिशय पुण्य उदय कारण जो होते हैं सत्ता-सम्पत्ति युक्त।
धन-जन-मान-डिग्री-प्रसिद्धि युक्त, वे प्रायः बनाते (हैं) नीति-नियम।। (1)
राजतंत्र से ले लोकतंत्र तक, प्रायशः ऐसा ही होता रहता।
रावण-कंस से हिटलर तक, तानाशाही भ्रष्ट नेता तक होता।।
दास प्रथा से ले दहेज प्रथा तक, पशुबलि से ले सतीदाह तक।
सामाजिक बंधन व विवाह से ले, मृत्युभोज से विवाह भोज तक।। (2)
सत्य-समता व शान्ति युक्त, मान्य(हो) जो नीति-नियम श्रेष्ठ।
स्व-पर-विश्व हित हेतु सहित, उदार-सहिष्णु व करूणा युक्त।।
निस्पक्ष-अनाग्रह व तथ्य सहित, सन्तुलित न्याय-प्रमाण युक्त।
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सापेक्ष, आत्मिक उत्थान कारण युक्त।।(3)
भय-प्रलोभन व दबाव रिक्त, अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार रिक्त।
शोषण-मिलावट ठगी रहित, सरल-सहज व अन्त्योदय/(सर्वोदय) सहित।
बहुमत या शक्तिशाली निर्मित, नहीं होते (सभी) सही नीति-नियम।
यथा कानून मान्य (भी) वधशाला, मद्य (या) नशीली वस्तु की मान्यता।।(4)
स्त्रियों को योग्य न मान्यता देना, समाज से राष्ट्र व धर्म तक।
गरीब-किसान व श्रमिक-बालक, समुचित अधिकार व व्यवस्था तक।।
तथाहि मानवेतर समस्त प्राणी हेतु, जीने का पूर्ण अधिकार न देना।
स्व-अधिकार वर्चस्व परिग्रह हेतु, भोगोपभोग व साधन हेतु।। (5)
यान-वाहन व कल-कारखाना हेतु, निवास-प्रवास व भोजन हेतु।
फैशन-व्यसन-खेल-कुतुहल हेतु, उनका शोषण से हत्या करना।।
जो अधिकार है उन्हें प्रकृति दत्त, मानवों को नहीं (उसे) छीनने का हक।
तो भी मानव प्राकृतिक नियम तोड़े, स्व-नियमों को अन्य पर थोपे।। (6)
अतः स्व-नियमों से भी सुखी न होते, दुःख देकर कैसे सुख पाते।
सुख हेतु अन्य को सुख ही देय, इस हेतु 'कनक सूरी' बनाया काव्य।। (7)

एक अदालत अंतर्मन की?

ध्यानाकर्षण

इस जीवन गाथा से ये जानने का अवसर भी मिलता है कि 1990 के

बाद न्याय प्रणाली को सबसे बड़ी चुनौती लोकतंत्र की विफलता से बढ़ रही है तथा अदालतों में 99 प्रतिशत याचिकाएँ सरकार से न्याय नहीं मिलने के कारण ही आ रही हैं तथा सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ कानून के शासन को अपराध और अराजकता में बदल रही हैं।

भारतीय साहित्य में महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू एवं नीरद-सी-चौधरी की आत्मकथाओं की एक अलग पहचान और भूमिका है। नेहरू जी को अपनी आत्मकथा लिखने की प्रेरणा महात्मा गाँधी की आत्मकथा सत्य के साथ मेरे प्रयोग से मिली, जबकि नीरद-सी-चौधरी ने गाँधी-नेहरू की आत्मकथाओं को अपनी आत्मकथा-आटो बायोग्राफी ऑफ एवं अनमोल इण्डियन का माध्यम बनाया। महात्मा गाँधी ने 59 वर्ष में तो जवाहरलाल नेहरू ने 47 वर्ष और नीरद चौधरी ने ये आत्मकथा 54 वर्ष में लिखी। इस अवस्था तक पहुँचकर इन सबके पास जीवन अनुभव से प्राप्त सब कुछ को कहने का पर्याप्त ऐसा ज्ञान था जो समाज को सार्थक दिशा और चिंतन देने में सहायक हो सका। इस पृष्ठभूमि में प्रश्न उठता है कि आप आत्मकथा क्यों लिखना चाहते हैं? यह तो पश्चिम की प्रथा है। पूर्व में तो किसी को अपनी जीवनी लिखने का पता ही नहीं मिलता और क्या लिखेगा? आज आप जिस चीज को सिद्धान्त रूप से सही मानते हैं, कल यदि वैसा मानना छोड़ दें तो? उनमें आगे परिवर्तन करना पड़ गया तो, आपके लिखे को बहुत से लोग प्रमाण समझकर अपना आचरण मढ़ते हैं और वे गलत रास्ते पर चल पड़ेंगे? इन परिस्थितियों के बीच हीड़ा चन्द्रिका प्रसादसिंह (संपादक) के अनुसार इस चर्चित पुस्तक का सूजन हुआ है। अभी हाल सेवा निवृत्त न्यायमूर्ति विनोद शंकर दवे ने अपने 85 वर्ष पूरे करके एक आत्मकथा जैसी पुस्तक 'एक अदालत मेरे मन में' प्रकाशित करी है। इसे पढ़कर मेरे मन की अदालत भी समय और समाज से अनेक सवाल कर रही है कि सवा सौ करोड़ देशवासियों के मन की अदालत आज किस हाल में है और वकील तथा न्यायाधीश अब न्याय की खोज को लेकर कितने ईमानदार हैं? वकील से जज बने विनोद दवे को पढ़कर मुझे फिर ऐसा लगा कि पल-पल बदलते इस लोकतंत्र में अदालत का विकल्प कोई दूसरा नहीं हो सकता क्योंकि पिछले 70 साल में संविधान के अन्तर्मन को छोड़कर दलगत चुनावी राजनीति ने, धर्म, जाति भाषा और क्षेत्रीयता की संकीर्णताओं को लेकर आत्मा और परमात्मा को भी सत्य से असत्य और उजाले से अंधेरे में धकेल

दिया है। गरीब को सस्ता और सहज न्याय पाना असम्भव हो गया है।

विनोद शंकर दवे की पुस्तक एक अदालत अंतर्मन में 346 पृष्ठों की 24 अध्यायों में विभाजित एक न्याय यात्रा है जिसमें एक व्यक्ति नहीं अपितु एक विचार बोलता है। ये जीवनगाथा सवाल करती है कि तुम वकील क्यों हो? और तुम न्यायाधीश होकर अपने न्याय धर्म को कैसे निभा रहे हो? तथा एक फरियादी का अंतर्मन तुम दोनों को भगवान् का रूप क्यों समझ रहा है? प्रश्न ये नहीं है कि आप कितने समझदार हैं अपितु प्रश्न ये है कि आप कितने ईमानदार हैं और अपने अंतर्मन को कैसे सुनते हैं? ऐसी मार्गदर्शक कहानी लगातार लिखी जानी चाहिए ताकि नई पीढ़ी न्याय का दर्शन जान सके। मुझे लगता है कि विनोद शंकर दवे ने इस बात को समझा है कि भारत के संविधान और लोकतंत्र की विविधता में एकता की विशेषता उसे प्राकृतिक न्याय से जोड़ती है। इसलिए पुस्तक का सम्पूर्ण आत्मकथा सहजता और सरलता से ये भी रेखांकित करता है कि न्याय पाना और न्याय करना कोई कला नहीं है अपितु मनुष्य की चेतना का विज्ञान है और जो तथ्यों से सत्य की खोज करता है तथा फिर न्याय की अवधारणा को जन्म देता है।

इस जीवन गाथा से ये जानने का अवसर भी मिलता है कि 1990 के बाद न्याय प्रणाली को सबसे बड़ी चुनौती लोकतंत्र की विफलता से बढ़ रही है तथा अदालतों में 99 प्रतिशत याचिकाएँ सरकार से न्याय नहीं मिलने के कारण ही आ रही हैं तथा सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ कानून के शासन को अपराध और अराजकता में बदल रही हैं। विकास और टेक्नोलॉजी ने न्याय के ऐसे नए आधार खड़े किए हैं जहाँ न्याय की संवेदनशीलता और मानवीयता नष्ट हो रही है। क्योंकि न्याय का दर्शन प्रति पल बदल रहा है और सरकारें-अदालतों को येन-केन प्रकारेण-महत्त्वहीन बना रही हैं। फिर भी भारत की न्याय व्यवस्था अभी तक सजग और सक्रियता से अपना कर्त्तव्य निभा रही है। क्योंकि एक अदालत का अंतर्मन जानता है कि जैसे-जैसे विधायिका और कार्यपालिका जनता के प्रति जवाबदेही से मुक्त होगी वह अदालतों की अनदेखी करेगी और लोकतंत्र को चुनावी बहुमत की तानाशाही में बदल देगी। न्यायपालिका की जवाबदेही और पारदर्शिता के सवाल आज इसीलिए उठ रहे हैं क्योंकि अदालतें कोई सीधी राजनीति नहीं चलाती अपितु संविधान में हम भारत के लोगों के अन्तर्मन की सुरक्षा करती हैं। एक

अदालत अंतर्मन की बताती है कि हर वकील और न्यायाधीश के भीतर एक सामाजिक सरोकार का भाव जरूरी है तथा न्याय व्यवस्था का व्यावसायीकरण रोका जाना चाहिए। आज जब लोगों की आत्मा मर रही है और पूँजीवाद के बाजार ने लोकतंत्र को अपना बंधुवा मजबूर बनाने का अभियान चला रखा है तब लोगों का विश्वास बचाने का दायित्व बैंच और बार के अंतर्मन पर निर्भर करता है। मुझे संयोगवश सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों के कई विख्यात और विश्वसनीय जज और वकीलों का सानिध्य मिला है और मेरा भरोसा है कि जिसकी अन्र्तआत्मा और अंतर्मन मर चुका है उन्हें वकील और विशेषकर न्यायाधीश नहीं बनना चाहिए क्योंकि न्याय का और सत्य का साक्षात रूप अदालतें ही हैं! जो लोग न्यायाधीश बन जाते हैं उन्हें ये भी नहीं भूलना चाहिए कि वह एक राज्य और व्यवसाय के वेतनभोगी कर्मचारी नहीं हैं अपितु संविधान और लोकतंत्र के रक्षक हैं और व्यवस्था तथा नागरिक उनकी अदालत में केवल पक्षकार हैं। अतः विनम्रता से यही कहूँगा कि जिसे अदालत का अंतर्मन नहीं है और जिसमें समय तथा समाज की अंर्तदृष्टि नही है वह न्याय की दुश्मन है। यह जीवन गाथा सबको पढ़नी चाहिए और सोचना चाहिए कि हम आज न्याय की रक्षा कैसे कर सकते हैं?

- वेदव्यास

अंतर पाटने में लगेंगे 217 साल

वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम के ग्लोबल जेंडर गैप इंडेक्स की मानें तो कामकाज के दौरान बराबरी के मामले में भारत की स्थिति काफी खराब है। जिस रफ्तार से महिला-पुरुषों के वेतन के अंतर को पाटने के प्रयास किए जा रहे हैं उस हिसाब से इसमें 217 साल लगेंगे। मॉन्स्टर इंडिया की एक सर्वे रिपोर्ट में साफ होता है कि देश में एक ही काम पर पुरुषों के मुकाबले महिलाएँ 25 प्रतिशत कम वेतन पाती है। रिपोर्ट के अनुसार कंपनियों में काम करने वाली करीब 68.5 फीसदी महिलाएँ मानती हैं कि महिलाओं और पुरुषों के वेतन में अंतर चिंता का विषय है। इतना ही नहीं 62.4 फीसदी महिलाएँ मानती हैं कि उनके पुरुष समकक्षों को उनसे बेहतर प्रमोशन के अवसर मिलते हैं। नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस की रिपोर्ट कहती है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों को महिलाओं की अपेक्षा 56 फीसदी ज्यादा दिहाड़ी मिलती है।

फ्रांस और आइसलैंड बने मिसाल

समान काम के लिए महिला-पुरुषों के वेतन में अंतर सिर्फ भारत में ही नहीं है, ये समस्या दुनियाभर के देशों में है। हालांकि इन देशों के बीच कुछ देश मिसाल भी बने हैं। उन्हीं में शामिल हैं फ्रांस और आइसलैंड। हाल ही फ्रांस सरकार ने फैसला किया है उन कंपनियों पर सख्त जुर्माना लगाया जाएगा, जो एक ही तरह के काम के लिए महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले कम वेतन देती हैं। सरकार इस सिलसिले में पेंशन नियमों में भी बदलाव कर रही है। वहीं यूरोपीय देश आइसलैंड में पुरुषों को महिलाओं से अधिक वेतन देना अवैध करार दे दिया गया है। नए कानून के अनुसार 25 से अधिक कर्मचारियों वाली कंपनियों और सरकारी एजेंसियों को अपनी समान वेतन की नीति के लिए सरकार से प्रमाण-पत्र लेना होगा। नए कानून के मुताबिक, समान वेतन की नीति पर न चलने वाली कंपनियों को जुर्माना भरना होगा। आइसलैंड सरकार का लक्ष्य वर्ष 2020 तक महिला और पुरुषों में वेतन असमानता को खत्म करना है।

समय की रेखा पर बदलती औरतें

ऋग्यवेदिक काल में स्त्रियों को जीवन के सभी क्षेत्रों में बराबरी का दर्जा प्राप्त था। बाद में (लगभग 500 ईसा पूर्व) स्थिति में गिरावट आनी शुरू हो गई थी। कई पत्नियों का रिवाज शुरू हुआ। नियोग परंपरा का आरंभ हुआ। ऋग्यवेदिक काल के अंत में त्रेता-द्वापर के बाद बचा-खुचा स्व नष्ट हो गया। फिर युद्धों में नारी की छीना-झपटी होने लगी।

मध्यकाल : मध्यकाल में विदेशियों के आक्रमण के साथ नगरों का ध्वंस तो हुआ, साथ ही हुआ नारी के मान का ध्वंस भी। यही वह समय था, जब भारत में सती प्रथा और बाल विवाह जैसी कुरीतियाँ शुरु हुई। अब तक विधवा विवाह को स्वीकार्यता थी, लेकिन कट्टरपंथी विचारों के बढ़ते वर्चस्व ने इस पर रोक लगा दी।

महिलाओं को कमोबेश दासता और बंदिशों का सामना करना पड़ा। इन परिस्थितियों के बावजूद कुछ महिलाओं ने राजनीति, साहित्य, शिक्षा और धर्म के क्षेत्रों में सफलता हासिल की। रजिया सुल्तान दिल्ली पर शासन करने वाली एकमात्र महिला साम्राज्ञी बनीं। गोंड की महारानी दुर्गावती ने 1564 में मुगल सम्राट अकबर के सेनापति आसफ खान से लड़कर अपनी जान गंवाने से पहले पन्द्रह वर्षों तक शासन किया था। चाँद बीबी ने

1590 के दशक में अकबर की शक्तिशाली मुगल सेना के खिलाफ अहमदनगर की रक्षा की। शिवाजी की माँ जीजाबाई को उनकी क्षमता के कारण क्वीन रीजेंट के रूप में पदस्थापित किया गया। दक्षिण भारत में कई महिलाओं ने गाँवों, शहरों और जिलों पर शासन किया और सामाजिक एवं धार्मिक संस्थानों की शुरुआत की। भक्ति आंदोलन ने भी महिलाओं की बेहतर स्थिति को वापस लाने की कोशिश की।

उन्नीसवीं शताब्दी : यह वो दौर था, जब तमाम सुधार आंदोलन जन्म ले रहे थे। राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले आदि कई सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान के लिए लड़ाईयाँ लड़ीं। पंडिता रमाबाई ने भी महिला सशक्तीकरण के उद्देश्य को हासिल करने में मदद की।

20वीं शताब्दी का आरम्भ : आमतौर पर देश मध्यकालीन प्रभावों में ही जी रहा था। महिलाएँ घर से निकलने के बारे में अब भी सोच नहीं सकती थीं। हाँ, यूरोप में महिला स्वतंत्रता आंदोलन की चिनगारी छिटपुट तौर पर देश में पहुँचने लगी थी।

1920 के आसपास का समय : जब भारत में पहले-पहल लड़कियों के लिए कुछ स्कूल खोले गए तो रूढ़िवादी तबके ने उसका जबर्दस्त विरोध किया, लेकिन चेतना की शुरुआत तो हो ही चुकी थी। हालांकि घरों में औरत का हाल कमोबेश वैसा ही था - मूक गुड़िया सरीखा।

40 का दशक : स्कूल जाने वाली महिलाओं की संख्या विरोध के बावजूद बढ़ रही थी। पुरुषों में एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया था, जो चाहता था कि उनके घरों की महिलाएँ भी पढ़ें-लिखें। इसके बावजूद महिलाओं की स्थिति में आमतौर पर कोई खास तब्दीली नहीं आई थी।

आजादी के बाद : हालात कुछ हद तक बदले। पढ़-लिखकर बड़ी हो रही नारियों की पीढ़ी ने समाज में एक जागरूकता पैदा करनी शुरू की। लड़कियों की पढ़ाई को सामाजिक स्वीकार्यता मिल चुकी थी। बहुत कम संख्या में महिलाएँ नौकरी की ओर कदम बढ़ा रही थीं।

60 का दशक : परिवार का मुखिया अब भी पुरुष था। घर उसी की मर्जी पर चलता था। महिलाओं की सीमाएँ तय थीं, लेकिन उन्हें लगने लगा कि वो इंसान है और परिवार में उनकी भी अहम जगह होनी चाहिए।

80 का दशक : महिला अधिकारों की बातों को गंभीरता से लिया जाने लगा। महिला संगठनों की बात सुनी जाने लगी। उन्होंने नए करियर की ओर पैर बढ़ाना शुरू किया। वो आर्थिक आत्मनिर्भरता को गंभीरता से ले रही थीं।

90 का दशक : दुनिया अपने दरवाजे खोल रही थी। ग्लोबलाइजेशन का दौर दस्तक दे रहा था। नए तरह का आत्मविश्वास महिलाओं में देखा जाने लगा, वेशभूषा से लेकर बातचीत तक में। रातोरात मानो एक नई क्रांति हो चुकी थी। शहरी महिलाएँ बदल चुकी थीं, लेकिन छोटे शहरों और गाँवों में कमोबेश वही हाल था। पुरुष बदल रही नई स्थितियों से समझौता कर रहे थे।

21वीं सदी की शुरुआत : अलग तरह के पुरुष और स्त्री का उदय हुआ। बराबरी से व्यवहार करने वाले जोड़े बनने लगे। पति ज्यादा संवेदनशील होने लगे। नौकरीपेशा बीवी के साथ उसके रिश्ते बदलने लगे हैं। – **भावना**

महिलाओं के अधिकार

- **हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956** द्वारा महिलाओं को पैतृक संपत्ति में अधिकार दिया गया है।
- **विशेष-विवाह अधिनियम, 1954** के अंतर्गत कोई महिला अपना धर्म बदले बिना किसी भी धर्म के व्यक्ति से विवाह कर सकती हैं।
- **प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961** के अनुसार बच्चे के जन्म के कुछ समय पहले या बाद तक महिलाओं के रोजगार को विनियमित करता है और प्रसूति और अन्य प्रसुविधाएँ सुलभ कराता है।
- **ठेका श्रम अधिनियम, 1970** द्वारा महिला श्रमिकों से बागानों में प्रातः 6 से सायं 7 के बीच 9 घंटे के बाद काम करने पर प्रतिबंध है।
- **समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976** के अंतर्गत महिलाओं को भी पुरुषों के समान पारिश्रमिक की व्यवस्था की गई है।
- **वेश्यावृत्ति निवारण अधिनियम, 1986** के मुताबिक महिलाओं के देह-व्यापार पर प्रतिबंध लगाया गया है।
- **स्त्री अभीष्ट निरूपण निषेध अधिनियम, 1986** द्वारा महिलाओं के अश्लील निरूपण पर प्रतिबंध है।

- **बाल-विवाह निषेध अधिनियम, 1976** के अनुसार निर्धारित उम्र से कम की बालिकाओं के विवाह पर प्रतिबंध लगाया गया है।
- **दहेज निषेध अधिनियम** के अंतर्गत विवाह में दहेज के लेन-देन पर प्रतिबंध की व्यवस्था की गई है।
- **सती निषेध आयोग अधिनियम, 1987** के मुताबिक महिलाओं को पति की मृत्यु के बाद सती होने पर प्रतिबंध लगाया गया है।
- **संविधान के 73वें व 74वें संशोधन अधिनियम, 1992** के अंतर्गत महिलाओं को त्रिस्तरीय पंचायती व नगर पालिकाओं में एक तिहाई आरक्षण की व्यवस्था है।
- **प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 1994** के मुताबिक गर्भावस्था में भ्रूण की पहचान करने पर रोक लगाने की व्यवस्था की गई है।
- **घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा हेतु अधिनियम, 2005** पति या साथ रहने वाले किसी भी पुरुष या उसके संबंधियों की हिंसा या प्रताड़ना से महिला को सुरक्षा प्रदान करता है।

49 साल पहले अमेरिकी सुधारक मार्टिन लूथर किंग की गोली मारकर हत्या कर दी गई थी

1968 - में अमेरिकी आंदोलनकारी मार्टिन लूथर किंग जूनियर की गोली मारकर हत्या कर दी गई थी। किंग ने अफ्रीकी-अमेरिकी नागरिकों के अधिकारों के लिए अहम भूमिका निभाई। 1955 में अल्बामा में श्वेत यात्रियों के लिए अपनी सीट ना छोड़ने के लिए रोजा पार्क्स ने गिरफ्तारी दी। इसके बाद किंग ने उनके समर्थन में बस आंदोलन चलाया। आंदोलन 383 दिनों तक चला। आखिरकार 1956 में सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया कि एफ्रो-अमेरिकी अश्वेत नागरिक नगर निगम के किसी भी बस में कहीं भी बैठ सकते हैं। किंग महात्मा गांधी से बेहद प्रेरित थे। उन्होंने अपनी भारत यात्रा को तीर्थयात्रा जैसा बताया था।

कसाब की फांसी पर 9573 रु . खर्च

मुंबई। मुंबई हमले के गुनहगार आतंकवादी अजमल कसाब को गुपचुप और

आनन-फानन में फांसी पर लटकाने का संदेह गहराता जा रहा है, क्योंकि सरकार ने उसकी मौत की पोस्टमार्टम रिपोर्ट देने से मना कर दिया है। आरटीआई के एक जवाब में गृह मंत्रालय के अवर सचिव ने कसाब की सुरक्षा, खान-पान, मेडिकल और कपड़ों के खर्च का ब्यौरा तो दिया है, परन्तु उसकी मौत की पोस्टमार्टम रिपोर्ट और राष्ट्रपति के सामने पेश दया याचिका के दस्तावेज देने से मना कर दिया। हालांकि आरटीआई कार्यकर्त्ता अनिल गलगली ने उसकी फर्स्ट अपील होम डिपार्टमेंट में दाखिल कर दी है।

कसाब की फांसी का खर्चा

फांसी के दिन कसाब के ऊपर 33.75 रूपये खाने पर, 169 रूपये कपड़े पर और 11, 572 रूपये सुरक्षा पर खर्च किए गए। उसे सुपुर्द-ए-खाक करने में, 9573 रूपये खर्च किए गए।

कसाब पर 28.45 करोड़ खर्च

कसाब को ट्रायल के लिए जेल में रखना राज्य सरकार को आर्थिक रूप से बहुत भारी पड़ा है। आरटीआई से पता चला है कि कसाब को जेल में रखने का खर्च प्रतिदिन औसतन 2 लाख रूपये से भी ज्यादा आया है। कसाब मुंबई की आर्थर रोड़ और पुणे के येरवड़ा जेल में कुल 1, 455 दिन रहा और इसके लिए 28.45 करोड़ रूपये खर्च करने पड़े। इसमें राज्य सरकार के हिस्से में 6.76 करोड़ और इंडो-तिब्बत बॉर्डर पुलिस (आईटीबीपी) के हिस्से में 21.68 करोड़ रूपये का खर्च आया। इसमें आईटीबीपी द्वारा किया 320 दिनों का खर्च शामिल नहीं है। अगर इस खर्च को मिला दिया जाए तो कसाब पर प्रतिदिन 2.5 लाख रूपये तक का खर्च होने का अनुमान है। पुलिस अधिकारियों के अनुसार आज तक किसी अन्य कैदी के ऊपर कभी भी इतना पैसा नहीं बहाया गया।

कसाब की कोठरी पर 5.25 करोड़ खर्च

आरटीआई के मुताबिक आर्थर रोड़ जेल में स्पेशल सेल बनाने के लिए 5.25 करोड़ रूपये खर्च किए गए। इन स्पेशल सेल को एक सुरंग के जरिये अदालत से जोड़ा गया और सुरंग की दीवारें लोहे की बनाई गई थीं, ताकि कसाब को मारने का कोई भी प्रयास कामयाब ना हो पाए। जानकारों का एक वर्ग यह भी कह रहा है कि कसाब की सुरक्षा पर दरअसल, इससे भी कहीं ज्यादा खर्च किया गया है और यह आधी-अधूरी

जानकारी है। गौरतलब है कि आरटीआई द्वारा दी गई जानकारी में वकीलों की फीस और मुंबई पुलिस द्वारा किए गए विविध खर्च शामिल नहीं है।

सुरक्षा पर सबसे ज्यादा खर्च

कसाब पर सबसे ज्यादा 27 करोड़ का खर्च सुरक्षा पर हुआ। उसके खाने पर 43, 417 रूपये, हॉस्पिटल और दवा पर 32, 097 रूपये और कपड़ों पर 2, 047 रूपये खर्च किए गए। आर्थर रोड़ जेल में स्पेशल सेल बनाने के लिए 5.25 करोड़ रूपये खर्च हुए।

आगे फैलाते हैं हाथ

एक रिपोर्ट के अनुसार देश के 90 फीसदी से ज्यादा बुजुर्ग छोटी-छोटी जरूरतों के लिए अपनी संतानों के आगे हाथ फैलाते हैं। उन्हें बेटों-बहुओं, बेटियों व दामादों के हाथों दुर्व्यवहार एवं अपमान झेलना पड़ता है। एक अन्य सर्वे रिपोर्ट के अनुसार 2011 में दिल्ली में बुजुर्गों की संख्या एक करोड़ 60 लाख के लगभग थी, जिनमें 15 लाख 60 वर्ष से अधिक थे, इनमें भी ज्यादातर संतानों से उत्पीड़ित थे।

नहीं मिला न्याय

बुढ़ापे में हक के लिए कोर्ट के चक्कर लगाना कितना दुखदायी है, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। अपनी संतानों से जमीन-जायदाद वापस लेने के चक्कर में बुजुर्गों की स्थिति दयनीय हो जाती है और कुछ तो अपना हक माँगते-माँगते ही दुनिया को अलविदा कह देते हैं। आखिरी समय में अपनी संतानों से इस तरह से बदसलूकी मन तोड़ देती है। सरकार ने इस दिशा में कानून तो बना रखा है लेकिन कोर्ट की लंबी प्रक्रिया के चलते बहुत कम को न्याय मिल पाता है।

भरण-पोषण, कल्याण अधिनियम-2007

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के लिए 'भरण-पोषण एवं कल्याण अधिनियम, 2007' भी है, जिसके तहत वरिष्ठ नागरिक अपनी संतान से गुजारा-भत्ता माँगने का हक रखते हें। कुछ राज्य सरकारें इसे और अधिक पुख्ता करने पर विचार भी कर रही हैं। कुछ समय पहले दिल्ली सरकार ने माता-पिता व वरिष्ठ नागरिकों के 'भरण-पोषण एवं कल्याण नियम-2007' में संशोधन करके बुजुर्गों की शिकायतों के निवारण के लिए सीधे

अपने इलाके के डिप्टी कमिश्नर से मिलने की अनुमति दी थी और उन्हें 21 दिन के भीतर शिकायत का निपटारा करने के लिए पाबंद किया था।

किसानों के अच्छे दिन कब आएंगे?

केन्द्र सरकार के एजेंण्डे में भी खेती और किसान अहम हैं। मगर हकीकत यह है कि कृषि प्रधान देश में हमारे अन्नदाता मुश्किल में हैं। देश की सवा सौ करोड़ की आबादी का पेट भरने वाले किसानों की बदहाल स्थिति है। कहीं उन्हें अपनी फसल के उचित दाम नहीं मिल रहे हैं तो कहीं सूखा-बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के चलते उनकी जिन्दगी मुश्किल में पड़ जाती है। पेश है इसी पर एक आकलन...

कहाँ बढ़ा उत्पादन?

2016-17 में 2.73 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन हुआ, जो अब तक का एक रिकॉर्ड है। चावल उत्पादन 10.9 करोड़ टन हो गया। वहीं, गेहूं का उत्पादन 9.7 करोड़ टन रहा। वहीं मोटे अनाज का उत्पादन 44.39 फीसदी रहा। दालों का कुल उत्पादन 2.2 करोड़ टन रहा।

कितनी छूट मिली थी कृषि लोन पर?

2017 में भारत में 3.1 लाख करोड़ के लोन माफ किए गए, जो भारत की 2016-17 में जीडीपी का 2.6 फीसदी था। यह देश के रक्षा बजट के बराबर (3.6 लाख करोड़) था। हालांकि लोन माफ करने से भी कोई राहत नहीं मिली।

कोल्ड स्टोरेज की क्षमता कितनी?

देशभर के कोल्ड स्टोरेज में करीब 3.49 करोड़ टन खाद्यान्न रखने की क्षमता है। देश में कुल 7645 कोल्ड स्टोरेज हैं। विशेषज्ञों के मुताबिक, इसमें से करीब 5000 इकाइयां तकनीकी तौर पर दोयम दर्जे की है।

13 करोड़ किसान बने मजदूर

2011 की जनगणना के मुताबिक, 26.3 करोड़ किसान हैं। इसमें से करीब आधे कृषि मजदूर हो चुके हैं।

सिंचाई पर निवेश कितना?

सरकार करीब 50 हजार करोड़ से ज्यादा का निवेश 2019-20 तक पाँच साल

में सिंचाई पर कर रही है। ये पैसे प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत खर्च होने हैं। सिंचाई के लिए 2015 में 910 अरब घन मीटर पानी के मुकाबले 2050 तक 1, 072 अरब घन मीटर पानी की माँग बढ़ेगी।

क्या किसान बन रहे मजदूर?

2001-11 के दशक के आँकड़ों को देखें तो बेचारा किसान हालात के आगे घुटने टेकने पर मजबूर हो रहा है। किसान खेती छोड़ने पर मजबूर हो रहा है। हालात इतने बदतर हो जाते हैं कि बहुत से किसान मजदूर बन गए। 2001 के आंकड़ों के मुताबिक, 106, 775, 330 किसान मजदूर थे, जबकि 2011 तक आते-आते इनकी संख्या बढ़कर 144, 300, 000 हो गई। यानी 3.5 फीसदी का इजाफा हुआ।

क्या किसान छोड़ रहे खेती?

2001 के जनगणना आँकड़ों से तुलना करें तो 2011 तक बहुत से किसानों ने खेती करना छोड़ दिया। 2001 में जहाँ 12, 73, 12, 851 किसान थे, वहीं, 2011 में इनकी संख्या घटकर महज 11,87,00,000 रह गई। यानी 7.1 फीसदी फीसदी की गिरावट आई। 1951 में 50 फीसदी लोग खेती कर रहे थे, जबकि 2011 में यह आंकड़ा 24 फीसदी रह गया।

कृषि विकास दर तो बढ़ी पर आय क्यों नहीं?

2005-15 तक देश के कृषि विकास दर 4 फीसदी सालाना के हिसाब से बढ़ी, जबकि बीते दशक में इसमें 2.6 फीसदी का इजाफा हुआ। वहीं, किसानों की आय के हिसाब से देखा जाए तो उनकी आय में 2017-18 में 2.1 फीसदी का इजाफा हुआ, जो इससे पहले के साल में 4.9 फीसदी था।

कितनी जटिल?

बीते साल मानसून सामान्य रहा, मगर आठ राज्यों में सूखे के हालात थे। देश की कुल खेती का 48 फीसदी ही सिंचित हो पाया।

भयावह तस्वीर

2015 में कृषि क्षेत्र से जुड़े 12, 602 लोगों ने आत्महत्या की। इनमें 8, 007 किसान थे जबकि 4, 595 लोग कृषि श्रमिक के तौर पर काम कर रहे थे। 2015 में

भारत में कुल 1,33,623 आत्महत्याओं में से अपनी जान लेने वाले 9.4 प्रतिशत किसान थे। 2015 में सबसे ज्यादा 4, 291 किसानों ने महाराष्ट्र में आत्महत्या की जबकि 1, 569 आत्महत्याओं के साथ कर्नाटक दूसरे स्थान पर है। मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में हालात खराब है।

आखिर क्या वजह?

खेती की बढ़ती लागत और कृषि उत्पादों की गिरती कीमत अहम वजह हैं। इसके अलावा बेमौसम बारिश, सूखा या बाढ़ के हालात भी जिम्मेदार हैं। आधे से ज्यादा किसान साहूकारों और आढ़तियों से कर्ज लेने को मजबूर हैं। कृषि जोतों का छोटा होते जाना भी किसानों के लिए अहम समस्या है।

बजट में क्या स्थिति?

2017-18 की बात करें तो कृषि बजट में बीते चार साल में 111 फीसदी का इजाफा हुआ। जो कि बीते कई साल के मुकाबले एक रिकॉर्ड है।

कितना अन्न बर्बाद?

2011-16 के बीच करीब 60, 000 टन अन्न वेयरहाउस व राज्य खाद्य निगमों में बर्बाद हो गया। सड़ गया या चूहे खा गए।

हर किसान पर है 47000 का कर्ज

देश में किसान परिवारों की संख्या देखें तो यह 9 करोड़ से अधिक हैं। सरकार ने राज्यसभा को दी जानकारी में बताया कि इनमें से 52 प्रतिशत किसान कर्ज में दबे हुए हैं। देश के किसान परिवारों पर औसतन प्रति परिवार 47000 रु. का कर्ज है। सबसे ज्यादा कर्ज में दक्षिण भारतीय राज्यों के किसान कर्ज में हैं। आन्ध्रप्रदेश 93 प्रतिशत, तेलंगाना 89 प्रतिशत, तमिलनाडु 82 प्रतिशत, कर्नाटक और केरल 77 प्रतिशत किसान परिवार कर्ज में है। राजस्थान में 61.8 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 57 प्रतिशत और मध्यप्रदेश में 45.7 प्रतिशत कर्ज में हैं। पंजाब में 53.2 प्रतिशत किसान कर्ज में हैं। 60 करोड़ लोग किसी न किसी बहाने कृषि पर निर्भर है।

अपराध की ओर बढ़ते किशोर

किशोरों द्वारा किए जाने वाले अपराधों में लगातार बढ़ोतरी होती जा रही है और

इसके लिए बने विशेष कानून की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाए जा रहे हैं। ताजा मामला चेन्नई का है, जहाँ अभी 9 फरवरी को 15 साल के एक स्कूली छात्र ने अपनी शिक्षिका का बेरहमी से कत्ल कर दिया। इसके लिए वह चाकू घर से छिपाकर लाया था और मौका निकालकर अध्यापिका को गोद डाला। पिछले वर्षों में हरियाणा सहित देश के दूसरे हिस्सों से भी इस तरह के मामले आते रहे हैं। इन सभी घटनाओं की खास बात यह है कि अपराध करने वाले सभी किशोर सम्पन्न घरों के थे। प्रयुक्त किए जाने वाले हथियार को वह घर से छिपाकर लाए थे और अपराध को उन्होंने जानबूझकर अंजाम दिया था।

किशोरों को दूसरे अपराधियों से अलग मानते हुए तथा उन्हें सुधरने का मौका देने के लिए सन् 2000 में किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम बनाया गया। इसमें 18 वर्ष के कम के सभी लोगों को किशोर माना गया। कोशिश की गई कि ऐसे अपराधियों को विशेष सुविधा दी जाए। उनकी गिरफ्तारी से लेकर सजा देने तक विशेष सुरक्षात्मक उपाय किए गए। अदालत को तकनिकी बिन्दुओं से अलग रखने के लिए किशोर न्याय बोर्ड बनाया गया जिसमें एक न्यायिक अधिकारी, तथा दो समाजसेवी लोगों को मजिस्ट्रेट का दर्जा देते हुए सुनवाई का अधिकार दिया गया। उनके लिए सामान्य और गम्भीर अपराधों में कोई अन्तर नहीं रखा गया। सामान्य तौर पर सभी मामलों में उनको जमानत देने की व्यवस्था की गई। अपराध के साबित होने पर भी उनहें आजीवन कारावास या मृत्युदण्ड की सजा नहीं दी जा सकती है। विशेष मामलों में अधिकतम 2 वर्ष के लिए सुधारगृह में भेजा जा सकता है किन्तु इसके लिए राज्य सरकार से होने वाले पत्र व्यवहार की अव्यावहारिकता को देखते हुए यह सजा शायद ही कभी दी जाती हो। गम्भीर मामलों में भी उसे डांट फटकर कर छोड़ दिए जाने की व्यवस्था की गई है। अपराधी साबित होने के बावजूद बच्चे के जीवन में इसके नकारात्मक प्रभाव को पूर्णतः समाप्त कर दिया गया है। कानून में व्यवस्था है कि अपराधी साबित होने के बावजूद किशोर के शेष जीवन में इसका कोई कुप्रभाव नहीं पड़ेगा और यह माना जाएगा जैसे कि उसने कोई अपराध नहीं किया हो। यहाँ तक कि एक निश्चित समय के बाद किशोर के अपराध से जुड़ी सभी फाइलों को नष्ट किए जाने का निर्देश दिया गया है ताकि किशोर किसी भी दाग से मुक्त होकर लाछंनमुक्त जीवन जी सकें।

देखा जाए तो सन् 2000 से 2010 के बीच किशोरों के अपराधों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती गई है। सन् 2000 में प्रति 1000 किशोर जनसंख्या पर 9 अपराधी थे। जबकि 2010 आते-आते यह संख्या 19 तक आ पहुँची। अपराधों की संख्या में वृद्धि का सिलसिला सन् 2000 के बाद ही शुरू हो गया था। सन् 2001 में प्रति 1000 किशोर में से 16 ने अपराध किया था, सन् 2002 में यह संख्या 18 तक पहुँच गई। सन् 2003 में पिछले वर्ष से थोड़ा सा घटकर यह संख्या 17 तक आ गई किन्तु सन् 2004 में फिर यह संख्या 18 तक पहुँच गई। सन् 2006 में एक बार फिर बढ़ोतरी देखी गई जब प्रति 1000 किशोरों में से 19 अपराधी प्रकृति के थे। 2007 में यह संख्या 20 तक पहुँची और 2008 में एक नया रिकार्ड बना जब प्रति 1000 किशोर जनसंख्या पर अपराध करने वालों की संख्या 21 तक पहुँच गई।

कुल अपराधों की सांख्यिकी के लिहाज सन् 2000 में कुल अपराधों में किशोरों द्वारा किए जाने वाले अपराध का प्रतिशत मात्र 0.5 था जबकि दो वर्षों में ही दोगुना हो गया और इस तरह 2002, 2003, 2004 और 2005 में यह एक प्रतिशत स्थिर रहा। 2008 में यह बढ़कर 1.2 प्रतिशत हो गया जबकि 2009 में थोड़ा सा घटकर 1.1 प्रतिशत रहा।

किशोरों द्वारा किए जाने वाले अपराधों की संख्या में होने वाली बढ़ोतरी को देखते हुए सन् 2000 के कानून पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। अपराध के तौर-तरीकों को देखने पर भी इस कानून में सुधार की जरूरत महसूस की जा रही है। भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय देश में बच्चे जल्दी परिपक्व होते हैं। इसके अलावा पढ़ाई-लिखाई के बढ़ते स्तर तथा टीवी और कम्प्यूटर जैसे साधनों ने उन्हें समय से पहले परिपक्व कर दिया है। इसलिए तय की गई 18 वर्ष के उम्र की सीमा को कम किए जाने की आवश्यकता है। किशोर न्याय बोर्ड के सदस्य के रूप में किए गए व्यक्तिगत अनुभव से महसूस हुआ है कि हत्या और बलात्कार जैसे गम्भीर अपराधों में किशोरों की भागीदारी बढ़ती जा रही हैं। कई बार इस कानून के दुरुपयोग की भी कोशिश की जाती हैं। कसाब का ज्वलन्त उदाहरण सामने हैं। उसने भी अदालत से गुजारिश की थी कि उसे किशोर माना जाए। यदि उसकी चाल सफल हो गई होती तो देश को अपने कारनामों से दहला देने वाले क्रूर आतंकवादी को केवल चेतावनी देकर छोड़ना पड़ता।

आने वाले समय में एक और खतरा सामने आ जाए तो आश्चर्य नहीं? यदि अपराधी गिरोहों ने इस कानून के दुरुपयोग का रास्ता निकाल लिया और 18 साल के कम किशोरों को असलहे दे करके नियोजित हिंसा की शुरुआत कर दी तो इसके बहुत भयावह परिणाम हो सकते हैं। इसलिए अब समय आ गया है कि किशोर न्याय कानून की समीक्षा की जाय। किशोरों की सीमा उम्र को 18 वर्ष से कम करके 15 वर्ष की जाए तथा आतंकवाद, हत्या, बलात्कार तथा डकैती जैसे गम्भीर मामलों को इस कानून से अलग किया जाए। इसके अलावा एक से अधिक बार अपराध करने वाले लोगों को भी इस कानून में मिली छूट न दी जाए।

तमिलनाडु में अब विधायकों को हर महीने मिलेंगे 1.05 लाख रुपए

तमिलनाडु में विधायकों की सैलरी में 91% का इजाफा

तमिलनाडु विधानसभा ने विधायकों का वेतन बढ़ाने वाला बिल पास किया

तमिलनाडु के विधायकों की सैलरी में करीब 91 प्रतिशत का इजाफा किया गया है। अब उन्हें हर महीने 1.05 लाख रुपए सैलरी मिलेगी। अभी 55 हजार रु. मिलते थे। मुख्यमंत्री ई. पलानिसामी ने बुधवार को विधानसभा में विधायकों का वेतन बढ़ाने संबंधी विधेयक को पेश किया। विधानसभा में पास भी हो गया है। तमिलनाडु में 234 विधायक है। मुख्यमंत्री ने बताया कि विधायक स्थानीय क्षेत्र विकास निधि भी 2 करोड़ से बढ़ाकर 2.5 करोड़ रु. की जाएगी। पूर्व विधायकों की पेंशन 20 हजार रु. बढ़ाई गई है।

विपक्ष ने किया विरोध : विधायकों की सैलरी उस समय दोगुनी की गई है, जब तमिलनाडु के किसान दिल्ली में और बस कर्मचारी राज्य में वेतन वृद्धि की माँग को लेकर एक हफ्ते से हड़ताल पर हैं। डीएमके नेता एमके स्टालिन ने विधेयक का विरोध करते हुए कहा कि विधायक का वेतन बढ़ाने से लोग उन पर हँसेंगे।

तेलंगाना के विधायकों की सबसे ज्यादा 2.50 लाख रुपए है सैलरी

भारत में 31 राज्य (दो केन्द्र शासित प्रदेश समेत) में 4,120 विधायक हैं। इनकी औसत सैलरी 1.15 लाख रु. है। करीब 7 साल में विधायकों की औसत सैलरी में करीब 125 प्रतिशत का इजाफा हुआ है। सबसे अधिक 2.50 लाख सैलरी तेलंगाना

के विधायकों की है। दिल्ली में 2.10 लाख रु. सैलरी है। सबसे कम 34 हजार रु. सैलरी त्रिपुरा के विधायकों को मिलती हैं।

सबसे कम 34 हजार सैलरी त्रिपुरा में और नगालैंड में 36 हजार रु. विधायक पाते हैं

सैलरी में सबसे अधिक 450% इजाफा दिल्ली और 170 % तेलंगाना में हुआ है

देश के सभी 31 राज्यों में विधायकों की सैलरी

राज्य	विधायक की सैलरी	राज्य	विधायक की सैलरी
तेलंगाना	2.50 लाख	तमिलनाडु	1.05 लाख
दिल्ली	2.10 लाख	कर्नाटक	98 हजार
यूपी	1.87 लाख	सिक्किम	86.5 हजार
महाराष्ट्र	1.70 लाख	मिजोरम	65 हजार
जम्मू-कश्मीर	1.60 लाख	गुजरात	47 हजार
उत्तराखंड	1.60 लाख	केरल	70 हजार
आन्ध्रप्रदेश	1.30 लाख	ओडिशा	62 हजार
हिमाचल प्रदेश	1.25 लाख	मेघालय	59 हजार
राजस्थान	1.25 लाख	पुडूचेरी	50 हजार
गोवा	1.17 लाख	अरुणाचल	49 हजार
हरियाणा	1.15 लाख	असम	42 हजार
पंजाब	1.14 लाख	मणिपुर	37 हजार
झारखंड	1.11 लाख	नगालैंड	36 हजार
मध्यप्रदेश	1.10 लाख	त्रिपुरा	34 हजार
छत्तीसगढ़	1.10 लाख		
बिहार	1.14 लाख		
पश्चिम बंगाल	1.13 लाख		

इसमें भत्ते, अन्य सुविधाएँ शामिल हैं।

यह सैलरी बिल विधानसभा में प्रस्तावित है, या पास हो चुका है।

सांसदों की सैलरी विधायकों से दोगुना

सांसदों की सैलरी राज्यों के विधायकों की औसत सैलरी से दो गुना ज्यादा है। सांसद को हर महीने 2.91 लाख रुपए मिलते हैं। इसमें 1.40 लाख रुपुए बेसिक सैलरी। 1.51 लाख रुपए का भत्ता है।

पद	सैलरी
राष्ट्रपति	1.50 लाख
उपराष्ट्रपति	1.25 लाख
प्रधानमंत्री	1.65 लाख
राज्यपाल	1.10 लाख
चीफ जस्टिस	1.10 लाख
सांसद	2.91 लाख
कैबिनेट सचिव	2.50 लाख

राष्ट्रपति, पीएम आदि की सैलरी में अन्य भत्ते नहीं जोड़े गए हैं।

कारवाई ट्रिब्यूनल का सवाल...

जाकिर नाइक पर तेजी, आसाराम पर सुस्ती क्यों

नई दिल्ली, अपीलीय मनी लॉन्ड्रिंग ट्रिब्यूनल के प्रमुख न्यायाधीश ने आसाराम जैसे स्वयंभू साधुओं के खिलाफ कारवाई नहीं करने के लिए प्रवर्तन निर्देशालय (ईडी) को कड़ी फटकार लगाई है। जज ने ईडी के वकील से पूछा कि करोड़ों की संपत्ति इकट्ठी करने और आपराधिक मामले दर्ज होने के बावजूद इनके खिलाफ कारवाई क्यों नहीं की गई? ट्रिब्यूनल ने 'यथास्थिति' का फैसला देते हुए ईडी को जाकिर नाइक की अन्य संपत्तियों को जब्त करने से रोक दिया। जस्टिस मनमोहनसिंह ने ईडी के वकील से पूछा-मैं आपको ऐसे 10 बाबाओं के नाम दे सकता हूँ, जिनके पास 10 हजार करोड़ रुपए से अधिक की संपत्ति है। क्या आपने उनमें से एक के खिलाफ भी कारवाई की है? क्या आपने आसाराम पर कोई कारवाई की है? 10 साल में ईडी ने असाराम की

सम्पत्तियों को अटैच करने के लिए कुछ नहीं किया है, जबकि नाइक के मामले में काफी तेजी दिखाई है।

42 साल पहले ब्रिटेन में लागू हुआ था महिलाओं और पुरुषों के समान अधिकार का कानून

1975 में आज ही के दिन ब्रिटेन में समाज और नौकरी में महिलाओं को पुरुषों की बराबरी का दर्जा और समान वेतन देने का कानून लागू हुआ था। 'द सेक्स डिस्क्रिमिनेशन एंड इक्वल पे' कानून के प्रावधानों के मुताबिक एक ही नौकरी के लिए पुरुषों के मुकाबले महिलाओं को कम वेतन देना गैर-कानूनी हो गया। इसके लागू होने से पाँच से ज्यादा लोगों वाले संस्थाओं, कंपनियों, स्कूल, रेस्त्रां आदि में इस तरह का भेदभाव गैर-कानूनी हो गया। समानता बढ़ाने के लिए एक इक्वल ऑपरच्यूनिटी कमीशन बनाया गया। कानून के तहत नौकरियों के विज्ञापनों में लिंग की चर्चा को रोका गया और कोई भी पद केवल पुरुषों या महिलाओं के लिए चिह्नित ना किए जाने का प्रस्ताव रखा गया। कानून के मुताबिक आम बोलचाल की भाषा में भी बदलाव लाने की बात कही गई। उदाहरण के तौर पर 'फायरमैन' की जगह 'फायर फाइटर्स' शब्द का इस्तेमाल किया जाने लगा।

खास : बराबरी का कानून आने के 25 साल बाद सर्वे में पाया गया कि इसकी मदद से महिलाओं और पुरुषों में वेतन का फर्क 40 प्रतिशत से घटकर 20 प्रतिशत हो गया है।

भाषाज्ञान की महत्ता-

भाषाज्ञान से करणीय भावज्ञान (सत्यज्ञान-आत्मज्ञान)

(चाल : 1. क्या मिलिए..2. सायोनारा...)

वाच्य-वाचक सम्बन्ध होता, वाच्य का कथक वाचक होता।
वाच्य अनुसार वाचक विधेय, वस्तु व प्रतिबिम्ब समान ज्ञेय।।
वाच्य होता है वस्तु स्वरूप, जिसका वर्णन कर वाचक।
सर्वज्ञ जानते पूर्ण वस्तु स्वरूप, उनका कथन है पूर्ण वाचक।।(1)

इसे ही कहते हैं प्रवचन, सर्वभाषामयी प्रकृष्ट वचन।
दिव्यध्वनि भी इसे ही कहते, सात सौ अठारह भाषामय वचन।।
इसे ही सुनकर गणधर स्वामी, ग्रन्थीत करते हैं सम्यक् विधान।
श्रुति परम्परा से (यह) प्रचलीत होता, आगम या श्रुत अतः कहा जाता।।(2)

श्रवण से होता यह श्रुत ज्ञान, परोक्ष रूप में यह केवलज्ञान।
अन्य इन्द्रियों से होता मूर्तिक ज्ञान, श्रुत से (होता) मूर्तिक-अमूर्तिक ज्ञान।।
श्रुत ज्ञान बिन न होता केवलज्ञान, केवलज्ञान हेतु चाहिए श्रुतज्ञान।
मतिज्ञान-अवधि व मनःपर्यय से, अतः श्रेष्ठ/(श्रेय) ज्ञान है श्रुतज्ञान।।(3)

श्रुतज्ञान भी है द्विविध प्रकार, द्रव्य-श्रुत व भाव श्रुत प्रकार।
द्रव्यश्रुत होता है भौतिकमय, भावश्रुत होता है चैतन्यमय।।
शब्द (भाषा) रूप से या अक्षर रूप, प्रमुख से द्रव्यश्रुत स्वरूप।
प्रवचन होता है भाषा स्वरूप, लिखित श्रुत है अक्षर स्वरूप।।(4)

द्रव्यश्रुत से होता है भावश्रुत, जिससे होता है सम्यक् ज्ञान।
सम्यक्ज्ञान से होता सही श्रध्दान, युगपत् होते हैं श्रद्धान-ज्ञान।।
दोनों से युक्त होता सही आचरण, तीनों के मेल से मोक्ष गमन।
अतएव श्रुतज्ञान है महान् ज्ञान, भेदविज्ञानमय आत्मिक ज्ञान।।(5)

अतएव भाषाज्ञान महत्त्वपूर्ण, श्रुतज्ञान हेतु श्रेष्ठ माध्यम।
द्रव्याक्षर से प्राप्य हो भावाक्षर (परमात्मा), करे अतः श्रुत अध्ययन।।(6)

बेहतर कम्यूनिकेशन की नींव है मजबूत वोकैबलरी

बर्सिन एंड एसोसिएट की स्टडी कहती है कि मजबूत वोकैबलरी वाले प्रोफेशनल्स अपनी स्ट्रैटजी को स्पष्ट और संक्षिप्त तरीके से कम्यूनिकेट करने में सफल हुए और अन्य कर्मचारियों की तुलना में 113 गुना ज्यादा कुशल और लाभदायक साबित हुए। साफ है कि मजबूत वोकैबलरी और लैंग्वेज स्किल्स कॅरिअर में तरक्की की सीढ़ी बनते हैं।

थोड़ा लेकिन नियमित सीखें

नए शब्द सीखने और याद रखने का पहला नियम है कम शब्द चुनना। कई सारे शब्द एक साथ याद करने से बेहतर होगा कि दिन में तीन शब्द सीखें। आप जो पढते हों

उसी में से इनका चयन करें। इन्हें अपनी वर्डबुक में जोड़ें या मेमराइज जैसे वोकैबलरी एप में बनी लिस्ट में शामिल करें।

कनेक्शन से याद करें

किसी भी नए शब्द को याद करने का सबसे आसान तरीका है उसे किसी ऐसी चीज के साथ जोड़कर याद करना जिसे आप पहले से जानते हो। उदाहरण के लिए अगर आपको tarantism शब्द याद करना है तो देखें कि यह आपको किसकी याद दिलाता है। क्या यह आपको tara या taran नाम के दोस्त की याद दिलाता है? अगर हाँ तो इसे आसानी से याद रखा जा सकता है।

दोहराना जरूरी है

याददाश्त को जितना इस्तेमाल किया जाए वह उतनी ही पैनी होती है। ऐसे में याद किए गए शब्दों को आपको रोजाना की बोलचाल में ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल करने की आदत डालनी होगी। अपनी नई वोकैबलरी के साथ एक्सपेरिमेन्ट भी करते रहे।

सांउड में समानता ढूँढ़े

माना कि आपको Nivial शब्द याद रखना है। क्या इस शब्द के साउंड में आपको क्रीम के एक ब्रांड नीविया के साउंड की समानता महसूस नहीं होती? इस तकनीक से मुश्किल शब्दों को याद रखा जा सकता है।

एक - एकक-एकांश। इकाई। मात्रक (युनिट)। एकाकी, अकेला। **एककालन-** (अनेक घटनाओं का) एक ही समय में घटित होना या घटित करना। समकालन। **एककालिक** - एक ही समय में घटित होने वाला। **एककोशी** - एक ही कोश से बना हुआ (प्राणी)। **एकगाछी** - एक प्रकार की नाव जो एक ही लम्बी लकड़ी को सुखाकर बनाई जाती है। **एकघ्न** - एक को मारने वाला (बाण आदि)। **एकचक्र** - एक पहिए वाला। सूर्य। **एकचक्री** - एक पहिए वाली गाड़ी। **एकचर**- अकेले घूमने-फिरने वाला प्राणी जैसा सांप एकचर प्राणी है। बिना सहायता के लिए रहने वाला। **एकचारिणी** - पत्नीव्रता।

एकड़ - माप की ब्रिटिश प्रणाली में 4840 वर्ग गज का क्षेत्रफलीय माप। **एकतल्ला** - एक मंजिल वाला (भवन आदि), एकमंजिला। **एकताक** - एक ही विषय का ध्यान रखने वाला। एकाग्रचित्त। तल्लीन। तन्मय। जिसमें उतार-चढ़ाव न हो,

आरोह-अवरोह रहित। एकस्वर। जिसमें परिवर्तन या विविधता न हो और इस कारण उकता देने वाला हो। अरुचिकर। बेमजा। **एकतार**- एक ही रंग-रूप के। एक-से। **एकतारा-इकतारा** - सितार के सदृश एक वाद्य, जिसमें एक ही तार होता है।

अंकगणितीय अंकों में प्रथम अंक। परमात्मा। इकाई संख्या वाला। दो का आधा। जैसे-आज एक पुस्तक खरीदी। (इसी अर्थ में एक संख्यावाचक समूहों (दर्जन, कौड़ी, आदि) के आरम्भ में अथवा इकाई का कोई भाग बताने वाली कुछ भिन्नों के अंश के रूप में भी प्रयुक्त होता है, जैसे एक दर्जन पुल, एक तिहाई पुस्तकें। किसी वर्ग के सदस्यों में से किसी विशिष्ट प्रकार का, जैसे सिंह एक पशु है। किसी वर्ग के सदस्यों में से किसी व्यक्तिवाचक शब्द का प्रयोग होने पर भी 'एक' का प्रयोग होता है, जैसे रामायण भारत का एक पूज्य ग्रन्थ है।

संदर्भ-

दिव्य ध्वनि

पूर्व भव में पवित्र विश्वमैत्री, विश्व प्रेम, विश्व उद्धारक, सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय भावनाओं से प्रेरित होकर 16 भावनाओं को भाते हुए केवली श्रुत केवली के पवित्र पादमूल में विश्व को क्षुभित करने वाली तीर्थङ्कर पुण्य प्रकृति को जो बीजरूप से संचय किया था वही पुण्य कर्मरूपी बीज शनैः शनैः उत्कृष्ट योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूपी परिसर को प्राप्त करके 13वें गुणस्थान में 'पूर्ण' रूप से पुष्ट वृक्ष रूप में परिणमन करके अमित फल देने के लिए समर्थ हो जाता है। दिव्य ध्वनि उन फलों में से सर्वोत्कृष्ट फल है। इस दिव्य ध्वनि की महिमा अचिंत्य, अनुपम, अलौकिक, स्वर्ग-मोक्ष को देने वाली है। दिव्य ध्वनि का सूक्ष्म वैज्ञानिक, भाषात्मक, शब्दात्मक, उच्चारणात्मक, ध्वन्यात्मक विश्लेषण जैन आगम में पाया जाता है। दिव्य ध्वनि के अध्ययन से शब्द विज्ञान, भाषा विज्ञान ध्वनि आदि का सूक्ष्म सर्वांगीण अध्ययन हो जाता है। दिव्य ध्वनि को 'ॐ कार' ध्वनि भी कहते हैं। दिव्य ध्वनि को विद्या, अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती भी कहते हैं। दिव्य ध्वनि को चतुर्वेद, द्वादशांग, श्रुत, आगम आदि नाम से अविधेय करते हैं। जैनागम में जिस प्रकार दिव्य ध्वनि का वर्णन है उस प्रकार का वर्णन अभी तक देश विदेश के अन्यान्य दर्शन, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा विज्ञान, शब्द विज्ञान, व्याकरण, मनोविज्ञान,

आधुनिक सम्पूर्ण विज्ञान विभाग में मेरे देखने में नहीं आया है। दिव्य ध्वनि का कुछ सविस्तार वर्णन प्राचीन आचार्यों के अनुसार निम्नलिखित उद्धृत कर रहे हैं -

जोयण पमाण संठिद तिरियामरमणुव णिवह पडिषोहो
मिदु महुर गंभीर तरा यिसद यिसय सयल भासाहिं।(60)

अट्ठरस महाभासा खुल्लय भासा यि सत्तसय संखा।
अक्खर अणक्खरामय सण्णीजीवाण सयल भासाओ।।(61)

एदासिं भासाणं तालुवदंतोढ्ठ कंठ वावारं
परिहरिय एक्क कालं भव्वजणाणंदकर भासो।(62)

(तिलोयपण्णति। प्रथम अधिकार)

दिव्य ध्वनि मृदु, मधुर, अति गम्भीर और विषय को विशद करने वाली भाषाओं से एक योजन प्रमाण समवसरण सभा में स्थित तिर्यञ्च, देव और मनुष्यों के समूह को प्रतिबोधित करने वाली है, संज्ञी जीवों को अक्षर और अनक्षर रूप 18 महाभाषा तथा 700 छोटी (लघु) भाषाओं में परिणत हुई और तालु, दन्त, ओष्ठ तथा कण्ठ से हलन-चलन रूप व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्य जनों को आनन्द करने वाली भाषा दिव्य ध्वनि है।

''केरिसा सा दिव्वज्झुणि सव्वभासासरुवा अक्खराणक्खरप्पिया'' अणंतत्थ गब्भबीज पदघडिय सरीर निसंज्झूविसय छग्घड़ियासु णिरंतरं, पयट्ठमाणिया इयरकालेसु संसय विविज्जासाणज्झवसाय भावगय गणह देवं पडिवट्टमाण सहावा संकर वदिगरा भावादो विसद सरुवारारुण बीस धम्म कहा कहण सहवा'' ज.ध.पु.,पृ. 115)

प्रश्न 1 - वह दिव्य ध्वनि कैसी होती है अर्थात् उसका क्या स्वरूप है?

उत्तर - वह सर्वभाषामयी है, अक्षर-अनक्षरात्मक है, जिसमें अनन्त पदार्थ समाविष्ट हैं, अर्थात् जो अनन्त पदार्थों का वर्णन करती है, ऐसे बीज पदों से जिसका शरीर गढ़ा गया है, जो प्रातः मध्याह्न और सायंकाल इस तीन सन्धयायों में छह छह घड़ी (पौने तीन घण्टे) तक निरन्तर खिरती है और उक्त समय को छोड़कर इतर समय में गणधर देव के संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय भाव को प्राप्त होने पर उनके प्रति प्रवृत्ति करना अर्थात् उनके संशयादिक को दूर करना जिसका स्वभाव है, संकर और व्यतिकर दोषों से

रहित होने के कारण जिसका स्वरूप विशद है और उन्नीस अध्ययनों के द्वारा धर्म कथाओं का प्रतिपादन करना जिसका स्वभाव है, इस प्रकार के स्वभाव वाली दिव्य ध्वनि समझना चाहिए।

गंभीरं मधुरं मनोहस्तरं दोषव्यपेत हितं।
कंठौष्ठादि वचनोनिमित्त रहितं नो वातारोधोद्गतम्।।
स्पष्टं तत्तदभीष्ट वस्तु कथकं निःशेष भाषात्मकं।
दूरासन्नसमं निरुपमं जैनं वचः वातु वः।। (95)(आचार सार)

गंभीर कर्ण प्रिय मनोहरतर दोष रहित हितकारी कण्ठ और तालु आदि वचन के निमित्त से रहित वातरोधजनित नहीं है स्पष्ट है उस-उस अभीष्ट वस्तु का कहने वाला है, निःशेष भाषात्मक है। एक योजनान्तर में स्थित दूर और निकट को समान श्रवण गोचर होने वाले उपमातीत जिनेन्द्र भगवान के स्वरनाम कर्म-वर्गणा वचन तुम्हारी रक्षा करें।

वह जिनेन्द्र वचन जो गंभीर है, मधुर है अतिमनमोहक है, हितकारी है, कंठ-ओष्ठ आदि वचन के कारणों से रहित है, पवन के न रोकने से प्रकट है स्पष्ट है, परम उपकारी पदार्थों का कहने वाला है, सर्वभाषामयी है, दूर व निकट में समान सुनाई देता है, वह उपमा रहित है सो वे श्रुत हमारी रक्षा करें।

दिव्य ध्वनि का एकानेक रूप

एक तयोऽपि च सर्व नृभाषाः सोऽन्तरनेष्ट बहूश्च कुभाषाः
अप्रतिपत्तिमपास्य च तत्त्वं बोधयति स्म जिनस्य महिम्ना।। (70)

(आदि पुराण। पर्व 23)

यद्यपि वह दिव्य ध्वनि एक प्रकार की थी तथापि भगवान् के महात्म्य से समस्त मनुष्यों की भाषाओं और अनेक कुभाषाओं को अन्तर्भूत कर रही थी अर्थात् सर्वभाषा रूप परिणमन कर रही थी और लोगों का अज्ञान दूर कर उन्हें तत्त्वों का बोध करा रही थी।

एकतयोऽपितथैव जलौघश्चित्ररसौ भवति द्रुमभेदात्।
पात्रविशेषवशाच्च तथायं सर्वविदो ध्वनिरपि बहुत्वम्।। (71)

जिस प्रकार एक ही प्रकार का जल का प्रवाह वृक्षों के भेद से अनेक रस वाला हो जाता है उसी प्रकार सर्वज्ञ देव की वह दिव्यध्वनि भी पात्रों के भेद से अनेक प्रकार

की हो जाती है।

एक तयोऽपि यथा स्फटिकाश्मा यदयदुपाहितमस्य विभासम्।
स्वच्छतया स्वयमप्यनुधत्ते विश्वबुधोऽपि तथा ध्वनिरुच्चैः।। (72)

अथवा जिस प्रकार स्फटिक मणि एक ही प्रकार का होता है तथापि उसके पास जो-जो रंगदार पदार्थ रख दिये जाते हैं वह अपनी स्वच्छता से अपने आप उन-उन पदार्थों के रंगों को धारण कर लेता है उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान् की उत्कृष्ट दिव्य-ध्वनि भी यद्यपि एक प्रकार की होती है तथापि श्रोताओं के भेद से वह अनेक रूप धारण कर लेती है।

जिस प्रकार जल वृष्टि के समय में जल का रस, गन्ध, वर्ण, एवं स्पर्श एक समान होते हुए भी विभिन्न मिट्टी के सम्पर्क से उसमें विभिन्न परिणमन होता है। लाल मिट्टी के सम्पर्क से जल लाल हो जाता है काली मिट्टी के सम्पर्क से जल काला हो जाता है उसी प्रकार दिव्य-ध्वनि रुपी जल विभिन्न भाषा-भाषी श्रोताओं के कर्ण रुपी मिट्टी में प्रवेश होने के बाद उस भाषा रुप में परिणमन हो जाता है। वृष्टि जल का रस एक समान होते हुये भी विभिन्न वृक्ष में प्रवेश करके विभिन्न रस, रुप परिणमन कर लेता है। जैसे-गन्ना के वृक्ष में प्रवेश करने से जल मधुर रस रुप होता है, नीम के वृक्ष में प्रवेश करके कड़वा (तिक्त) रस रुप होता है, मिर्च के वृक्ष में प्रवेश करके चरपरा रुप होता है, इमली के वृक्ष में प्रवेश करके खट्टा रस रुप परिणमन कर लेता है इसी प्रकार - दिव्य ध्वनि रुपी जल विभिन्न भाषा भाषियों के कर्ण (गव्हर) में प्रवेश करके विभिन्न रुप में परिणमन कर लेती है। जो श्रोता संस्कृत जानता है उसके कर्ण गव्हर में (कर्ण पुट में) जाकर संस्कृत रुप में, हिन्दी भाषी श्रोता को निमित्त पाकर हिन्दी भाषा रुप में, कन्नड़ भाषी श्रोता को निमित्त पाकर कन्नड़ भाषा रुप में, परिणमन कर लेती है। जिस प्रकार वर्तमान वैज्ञानिक युग में एक यन्त्र का अविष्कार हुआ है जिस यन्त्र के माध्यम से भाषा परिवर्तित हो जाती है। एक वक्ता इंग्लिश में भाषण कर रहा है और एक हिन्दी भाषी श्रोता उस वैज्ञानिक यन्त्र का प्रयोग करके इंग्लिश भाषण को परिवर्तित करके हिन्दी में सुन सकता है। उस समवसरण रुपी धर्म-महासभा में असंख्यात देव, करोड़ अवधि मनुष्य लक्षावधि पशु विनम्र भाव से मित्रता से एक साथ बैठकर उपदेश सुनते है। दिव्य ध्वनि निष्श्रुत होकर, पशु के कान में पहुँचने पर वह दिव्य ध्वनि पशु के भाषारुप में परिवर्तित हो जाती है। दिव्य ध्वनि देवों के

कान में पहुँच कर देवभाषा रुप परिणमन कर लेती है। इसलिए दिव्य ध्वनि वक्ता के अपेक्षा निश्रुत अवस्था में एक होते हुए भी विभिन्न श्रोताओं के निमित्त से विभिन्न भाषा रुप परिणमन करने के कारण अनेक स्वरुप हैं, इसलिए दिव्य ध्वनि अठारह महाभाषा तथा सात सौ लघु (क्षुद्र) भाषा स्वरुप है।

दिव्य ध्वनि सर्व भाषास्वभावी

तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम्।

प्रणियत्यमृतं यद्वत्प्राणिनो व्यापि संसदि।। (स्वं. स्तो. 97 श्लोक)

हे सर्वज्ञ हितोपदेश भगवन्! आपकी वचनामृत सर्वभाषा में परिणमन होने योग्य स्वभाव को धारण किये हुए हैं। विश्व धर्मसभा (समवसरण) व्याप्त हुआ श्री सम्पन्न वचनामृत प्राणियों को उसी प्रकार तृप्त करता है जिस प्रकार अमृतपान से प्राणी तृप्त हो जाता है।

योजनान्तर दूरसमीपस्थाष्टा-दशभाषा-सप्तहतशतकुभाषायुत-तिर्यग्देव मनुष्यभाषाकार-न्यूनाधिक-भावातीत मधुर मनोहर-गम्भीरविशद वागतिशयसम्पन्नः भवनवासिवाणव्यन्तर - ज्योतिष्क - कल्पवासीन्द्र-विद्याधर-चक्रवर्तीबल - नारायण - राजाधिराज - महाराजाधर्ममहामहामण्डलीकेन्द्राग्निवायु - भूति - सिंह व्यालादि - देवविद्याधर मनुष्यर्षितिर्यगिन्द्रेभ्यः प्राप्तपूजातिशयो महावीरोऽर्थकर्त्ता

एक योजन के भीतर दूर अथवा समीप बैठे हुए अठारह महाभाषा और सात सौ लघु भाषाओं से युक्त ऐसे तिर्यंच, देव और मनुष्यों की भाषा के रूप में परिणत होने वाली तथा न्यूनता और अधिकता से रहित, मधुर, मनोहर, गम्भीर और विशद ऐसी भाषा के अतिशय को प्राप्त, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, कल्पवासी देवों के इन्द्रों से विद्याधर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, राजाधिराज, महाराज, अर्द्धमण्डलीक, महामण्डलीक, राजाओं से, इन्द्र, अग्नि, वायु, भूति, सिंह, व्याल आदि देव तथा विद्याधर, मनुष्य, ऋषि और तिर्यञ्चों के इन्द्रों से पूजा के अतिशय को प्राप्त श्री महावीर तीर्थंकर अर्थ कर्त्ता समझना चाहिए। षट्खंडागमे **दिव्य ध्वनि अक्षर-अक्षरात्मक अक्खराणक्खराप्पिया। (क.पा.)**

दिव्य ध्वनि अक्षर-अनक्षरात्मक है -

अनक्षरात्मकत्वेन श्रोतृश्रोत्रप्रदेश प्राप्ति समयपर्यंत....

तदन्तरं च श्रोतृजनाभिप्रेतार्थीषु संशयादि निराकरणेन सम्यग्ज्ञान जनकं....(गो.जी.)

केवली की दिव्य-ध्वनि श्रोताओं के कर्णप्रदेश को जब तक प्राप्त नहीं होता है तब तक अनक्षर स्वरुप ही है। जब श्रोता के कर्णप्रदेश में प्राप्त हो जाती है तब अक्षरात्मक रुप परिणमन हो जाती है। यथार्थ वचन का अभिप्राय श्रोताओं के संशय आदि को दूर करना है।

वयणेण विणा अत्थपदुप्पायणं ण संभवइ, सुहुमअण्याणै सण्णाए परुवणाणुववत्तीदो ण चाणक्खराए झुणीए अत्थपदुप्पायणं जुज्जदे, अणक्खरभासातिरिक्खेमोतूणण्णेंसि तत्तो अत्थावगमां भावदो। ण च दिव्यज्झूणी अणक्खरपिप्या चेव, अ्टठारससत्तासयभास... कुभासाप्पियत्तादो।.... तेसिमणेयाणं बीजपदणिलीणत्थपरुवायाणं दुवाल संगाणं कारओ गणहर भडारओ गंथकत्तारओत्तिअण्मुवगमादो।

प्रश्न - वचन के बिना अर्थ का व्याख्यान सम्भव नहीं क्योंकि सूक्ष्म पदार्थों की संज्ञा अर्थात् संकेत द्वारा प्ररुपणा नहीं बन सकती। यदि कहा जाए कि अनाक्षरात्मक ध्वनि द्वारा अर्थ की प्ररुपणा हो सकती है सो भी योग्य नहीं है, क्योंकि अनक्षर भाषायुक्त तिर्यञ्चों को छोड़कर अन्य जीवों को उससे अर्थ ज्ञान नहीं हो सकता है और दिव्य ध्वनि अनक्षरात्मक ही हो सो भी बात नहीं है क्योंकि वह अठारह भाषा व सात सौ कु (लघुभाषा) भाषा स्वरुप है।

उत्तर - अठारह भाषा व सात सौ कुभाषा स्वरुप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीज पदों का प्ररुपक अर्थकर्त्ता तथा बीज पदों में लीन, अर्थ के प्ररुपक बारह अंगों के कर्त्ता ''’गणधर भट्टारक’ ग्रन्थकर्त्ता है ऐसा स्वीकार किया गया है।

अभिप्राय यह है कि बीज पदों का जो व्याख्याता है वह ग्रन्थकर्त्ता कहलाता है।

दिव्य ध्वनि की अक्षरात्मकता-

तीर्थंकर वचनमनक्षरत्वाद् ध्वनिरुपं तत एव तदेकम्।

एकत्वान्न तस्य द्वैविध्यं घटत इति चेन्न, तत्र स्यादित्यादि असत्यमोषवचन-सत्वतस्तस्य ध्वनेरक्षरत्वसिद्धेः।

प्रश्न – तीर्थंकर के वचन अनक्षर रूप होने के कारण ध्वनिरूप हैं, और इसलिए वे एकरूप हैं, और एकरूप होने के कारण वे सत्य और अनुभय इस प्रकार दो प्रकार के नहीं हो सकते?

उत्तर – नहीं, क्योंकि केवली के वचन में 'स्यात्' इत्यादि रूप से अनुभय रूप वचन का सद्भाव पाया जाता है। इसलिए केवल ध्वनि अनक्षरात्मक है।

यह बात प्रसिद्ध है।

साक्षर एव च वर्णसमुहान्नैव विनार्थगतिर्ज गतिस्यात्।

दिव्य ध्वनि अक्षररूप ही है, क्योंकि अक्षरों के समूह के बिना लोक में अर्थ का परिज्ञान नहीं हो सकता।

यत्पुष्टमादितस्तेन तत्सर्वमनुपूर्वशः।
वाचस्पतिरनायासाद् भरतं प्रत्यबू बुधत्।।(190)

भरत ने जो कुछ पूछा - उसको भगवान् ऋषभदेव बिना किसी कष्ट के क्रम पूर्वक कहने लगे।

दिव्य ध्वनि अनक्षरात्मक –

यत्सर्वात्महित न वर्णसहितं न स्पन्दितोष्ठद्वयं।
नो वांछाकलितं न दोषमलिनं नोच्छवासरुद्धक्रमं।।
शांतामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्षिभिस्तन्नः।
सर्वविदो विनष्टविपदः पायादपूर्व वचः।।

सर्व जीव हितकर वर्ण रहित, दोनों ओष्ठ के परिस्पंदन से रहित, इच्छा रहित, दोष रहित, उच्छ्वास रुद्ध से रहित, द्वेष आदि से रहित होने के कारण शान्त समान रुप से पशु-पक्षी, मनुष्य-देव आदि द्वारा सुनने योग्य सम्पूर्ण विषय को प्रतिपादन करने वाला समस्त विपद से रहित, अपूर्व वचन (दिव्य-ध्वनि) हम सब की रक्षा करे।

इस श्लोक में 'न' वर्ण सहित विश्लेषण से सिद्ध होता है दिव्य ध्वनि अक्षर से रहित होने के कारण अनक्षरात्मक है।

भाषात्मको भाषारहितश्चेति, भाषात्मको द्विविधोऽक्षरात्मकोऽनक्षरात्मकश्चेति। अक्षरात्मकः संस्कृत प्राकृतादिरुपेणायम्लेच्छभाषाहेतुः, अनक्षरात्मको द्विन्द्रियादिशब्दोरुपो

दिव्य-ध्वनिरुपश्च।

भाषा दो प्रकार की है –

(1) भाषात्मक (2) अभाषात्मक।

पुनः भाषा (1) अक्षरात्मक (2) अनक्षरात्मक रुप से दो प्रकार की है -

अक्षरात्मक भाषा –

संस्कृत, प्राकृत, आर्य, म्लेच्छादि भाषा रुप जो शब्द हैं वे सब अक्षरात्मक भाषा है।

अनक्षरात्मक भाषा–

द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी, पंचेइन्द्रिय जीवों के शब्द तथा केवली भगवान् की दिव्य-ध्वनि अनक्षरात्मक है।

दिव्य ध्वनि अक्षर एवं अनक्षरात्मक है। इसमें सूक्ष्म भाषा विज्ञान शब्द विज्ञान, ध्वनि विज्ञान के सिद्धान्त निहित हैं। जिस समय टेलिप्रिन्टर भेजा जाता है उस समय टेलिप्रिन्टर का संवाद व सन्देश कुछ अनेक अनक्षरात्मक संकेतात्मक, (टिक-टिक-टक-टर) ध्वनि के रूप में रहता है। संवाद ग्राहक उस संकेतात्मक ध्वनि को अक्षर भाषात्मक ध्वनि में परिवर्तित कर देता है।

उसी प्रकार जब दिव्य ध्वनि खिरती है तब दिव्य-ध्वनि अनक्षरात्मक रहती है। श्रोता के कर्ण में पहुँचने के बाद वह ध्वनि श्रोता के योग्य भाषा में परिवर्तित हो जाती है। इसलिए दिव्य ध्वनि निश्रुत होने के बाद जब तक श्रोता तक नहीं पहुँचती तब तक वह दिव्य ध्वनि अनक्षरात्मक, अभाषात्मक (अनेकभाषात्मक, सर्वभाषात्मक), रहती है एवं जब श्रोता के कर्ण में प्रवेश करती है तब वह दिव्य ध्वनि अक्षरात्मक, भाषात्मक, परिवर्तित हो जाती है।

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो।। 334।। गो.जी.

गाथार्थ– अनभिलाप्य पदार्थों (जो पदार्थ शब्दों द्वारा नहीं कहे जा सकते हैं) के अनन्तवें भाग प्रमाण प्रज्ञापनीय (प्रतिपादन करने योग्य) पदार्थ हैं। प्रज्ञापनीय पदार्थों के अनन्तवें भाग प्रमाण श्रुत-निबद्ध पदार्थ है।

अनन्त ज्ञान के धारी केवली द्वारा प्रतिपादित विषयों का अनन्तवाँ भाग चार ज्ञान

के धारी गणधर (गणपति-गणेश) शास्त्र रूप में लिपिबद्ध करते हैं। भले समस्त पदार्थों का अनन्तवाँ भाग शास्त्र बद्ध होता है किन्तु भाव श्रुतका विषय समस्त पदार्थ की कुछ अवस्थाएँ/पर्यायें हैं। गणधर द्वारा रचित ग्रन्थ कितने विशाल थे उनका एक अनुमान निम्न वर्णन से हो जाता है।

अक्षर समास ज्ञान तथा पदज्ञान का स्वरूप

एयक्खरादु उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो।।

संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं।।335।।

गाथार्थ : एक अक्षर ज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर की वृद्धि होते-होते जब संख्यात अक्षरों की वृद्धि हो जाय तब पद नामक श्रुत ज्ञान होता है।

विशेषार्थ : अक्षर श्रुतज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर की ही वृद्धि होती है, अनन्य वृद्धियाँ नहीं होती है। इस प्रकार आचार्य से परम्परागत उपदेश पाया जाता है। कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि अक्षर श्रुतज्ञान भी छः पकार की वृद्धि से बढ़ता है, किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि समस्त श्रुतज्ञान के संख्यातवें भागरूप अक्षरज्ञान से ऊपर छः प्रकार की वृद्धियों का होना सम्भव नहीं है।

अक्षरश्रुत ज्ञान से ऊपर और पदश्रुत ज्ञान के संख्यात विकल्पों की 'अक्षर समास' यह संज्ञा है। अन्तिम अक्षर समास श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर ज्ञान के बढ़ने पर पद नामक श्रुतज्ञान होता है।

अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यमपद इस प्रकार पद तीन प्रकार का है। उनमें से जितने अक्षरों के द्वारा अर्थ का ज्ञान होता है वह अर्थपद है। वह अर्थपद अनवस्थित है, क्योंकि अनियत अक्षरों के द्वारा अर्थ का ज्ञान हो जाता है और यह बात प्रसिद्ध भी नहीं है क्योंकि 'अ' का अर्थ विष्णु है, 'इ' का अर्थ काम है और 'क' का अर्थ ब्रह्मा है। इस प्रकार इत्यादि स्थलों पर एक-एक अक्षरों से ही अर्थ की उपलब्धि होती है। आठ अक्षर से निष्पन्न हुआ प्रमाणपद है। यह अवस्थित है, क्योंकि इस की आठ संख्या नियत है।

अर्थपद : जैसे 'सफेद गौर को रस्सी से बाँधो' या 'अग्नि लाओ' या 'छात्र को विद्या पढ़ाओं' अथवा 'बालक को दूध पिलाओ' इत्यादि।

प्रमाणपद : श्लोक के चार पाद होते हैं। प्रत्येक पाद में आठ-आठ अक्षर होते हैं। प्रत्येक पाद की 'प्रमाणपद' संज्ञा है क्योंकि प्रमाणपद की आठ संख्या नियत है।

यहाँ पर न तो अर्थपद से प्रयोजन है और न प्रमाणपद से प्रयोजन है किन्तु मध्यपद से प्रयोजन है।

तिविहं पदमुद्दिट्ठं पमाणपदत्थमज्झिमपदं च।
मज्झिमरपदेण वुत्तां पुव्वंगाणं पदविभागा।।9।।
तिविहं तु पदं मणिदं अत्थपद-पमाण-मज्झिमपदं ति।
मज्झिमपदेण मणिदा पुव्वंगाणं पदविभागा।।69।।

अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यमपद, इस तरह पद तीन प्रकार का कहा गया है। इनमें मध्यम पद के द्वारा पूर्व अंगों के पदविभाग होते हैं।

मध्यम पद के अक्षरों का प्रमाण

सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव।
सत्तसहस्साट्ठसया अटठासीदी य पदबण्णा।।336।।

गाथार्थ : सोलह सौ चौंतीस कोटि तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी (16348307888) एक मध्यमपद में अक्षर होते हैं।

विशेषार्थ : सोलह सौं चौंतीस करोड़ तिरासी लाख, अठहत्तर सौ अठासी (16348307888) अक्षरों को लेकर द्रव्य श्रुत का एक पद होता है। इन अक्षरों से उत्पन्न हुआ भावश्रुत भी उपचार से 'पद' कहा जाता है।

सत् गृहस्थों (श्रावकों) के भी हरकार्य से होता है पाप बन्ध

(पाप को दूर करने के लिए सद्गृहस्थों को सदा धार्मिक कार्य करणीय)

(स्व-शुद्धात्म ध्यान रत मुनि की छूट जाती है धार्मिक क्रियायें)

(चाल : 1. क्या मिलिए......2. सायोनारा .....)

सद् गृहस्थों के भी हरकार्य से होता निश्चय से पाप बन्ध।
उस पाप को दूर करने हेतु सदाकरणीय धार्मिक कार्य।।
विवाह से ले भोगपभोग व लौकिक पढ़ाई से नौकरी-व्यापार।
कृषि राजनीति कानून-शिल्प आरंभ-परिग्रहादि गृहव्यापार।।(1)

घर बनाना व फैक्ट्री चलाना, खान खोदना व यान-वाहन चलाना।। (रखना)
इत्यादि समस्त गृहव्यापार से, होता पाप-बन्ध अनिवार्य।।
भले उक्त कार्य न्यायोचित हो या सामाजिक-मान्य, परम्परा हो।
तद्भव मोक्षगामी महापुरुषों को भी होता है पाप बन्ध न्यूनतम हो।।(2)

पंचमगुणस्थानवर्तीओं को भी, होता है पापबन्ध उक्त कार्यों से।
अतएव उन्हें भी उक्त पाप दूर हेतु, करणीय सदा ही पुण्य कार्य।।
दया-दान-सेवा-परोपकार-पूजा-आराधना-साधु-साध्वी सत्कार।
मन्दिर-मूर्ति निर्माण व पंचकल्याणक व धर्म का प्रचार।।(3)

उक्त कार्य भी करणीय है, ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि रहित।
ज्ञान-वैराग्य बढ़ाने हेतु, मैत्री-प्रमाद-कारुण्य-माध्यस्थ युक्त।।
सादा जीवन उच्च विचार सह, उदार-सहिष्णु भावना युक्त।
साधु बनने के लिए लक्ष्य सहित, तब ही होता यथार्थ से पुण्यकर्म/(धर्मकर्म)।।(4)

यदि कोई ऐसा न करते पुण्यकर्म, तो अवश्य होगा पापकर्म।
पापकर्म से होगा संसार भ्रमण, सातिराय पुण्य से दुर्गति नाशन।।
सातिशय पुण्य से जो बनते श्रमण, समता-शान्ति से जो करते ध्यान।।
प्रमाद रहित व ख्यातिपूजादिविरक्त, उन्हें न चाहिए श्रावक योग्य-धर्म।।(5)

जो शुद्धात्माध्यान सहित होते, उनके होता सप्तगुणस्थान।
ऐसे साधु होते यथार्थ से धर्मध्यानी, उनको बन्धता सातिशय पुण्य।।
ऐसे साधु होते छट्टेगुणस्थानवर्ती साधुओं से भी श्रेष्ठ।
जो अठावीस मूलगुण पालन रत व विविध बाह्य प्रभावना सहित।।(6)

छटे गुणस्थान से अधिक पाप संवर, होता सप्तम गुणस्थान में।
तथाहि पाप निर्जरा अधिक होती है, सातिराय पुण्यबंध भी अधिकतम।।
यहाँ से पुण्य क्रियायें नहीं होती, स्व-शुद्धात्मा की लीनता में।
इनसे नीचे गुणस्थानवर्तीओं को, सदा ही करणीय पुण्यकर्म।।(7)

आत्मध्यान ही परम श्रेय है, इससे ही मिलता है परिनिर्वाण।
इस हेतु ही समस्त धर्म करणीय, 'कनक' का लक्ष्य परिनिर्वाण।।(8)

ओबरी, दिनांक 12.01.2018, रात्रि 07.29

धर्मध्यान कहाँ होता

मुक्खं धम्मज्झाणं उत्तं तु पमायविरहिए ठाणे।

देस विरए पमत्ते उवयारेणेव णायव्वं।।(371)

अर्थ : यह धर्मध्यान मुख्यता से प्रमाद रहित सातवें गुणस्थान में होता है तथा देशविरत पाँचवें गुणस्थान में और प्रमत्त संयत छठे गुणस्थान में भी यह धर्मध्यान उपचार से होता है। ऐसा समझना चाहिये।

दूसरे प्रकार के धर्मध्यान का स्वरूप

दहलक्खणसंजुत्तो अहवा धम्मोत्ति वण्णिओ सुत्ते।

चिंता जा तस्से हवे भणियं तं धम्मझाणुत्ति।।372 भाव.

अर्थ : अथवा सिद्धान्त सूत्रों में उत्तमक्षमा आदि दश प्रकार का धर्म बतलाया है उन दशों प्रकार के धर्मों का चिंतवन करना भी धर्म्य ध्यान कहलाता है।

अहवा वत्थुसहावो धम्मं वत्थू पुणो व सो अप्पा।

झायंताणं कहियं धम्मझाणं मुणिंदेहिं।।(373)

अर्थ : वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं तथा वस्तुओं में वा पदार्थों में मुख्य वस्तु वा मुख्य पदार्थ आत्मा है। इसलिए उस आत्मा का ध्यान करना और उसके शुद्ध स्वरूप का ध्यान करना धर्म्यध्यान है। ऐसा जिनेंद्रदेव ने कहा है।

धर्म्यध्यान के दूसरे प्रकार के भेद

तुं फुडु दुविहं भणियं सालंवं तह पुणो अणालंवं।

सालंवं पंचण्हं परमेंट्ठीणं सरूवं तु।।(374)

अर्थ : वह धर्म्यध्यान दो प्रकार है एक आलंबन सहित और दूसरा आलंबन रहित। इन दोनों में से पंच परमेष्ठी के स्वरूप का चिंतवन करना है उसको सालम्ब ध्यान कहते हैं।

निरालंब ध्यान

जं पुणुं वि णिरालंवं तं झाणं गयपमाण गुणठाणे।

चत्तगेहस्स जायइ धरियं जिणलिंगरुवस्स।। (381)

अर्थ : जो गृहस्थ अवस्था को छोड़कर जिनलिंग धारण कर लेता है। अर्थात्

दीक्षा लेकर निर्गंथ मुनि हो जाता है और जो मुनि होकर भी अप्रमत्त नाम के सातवें गुणस्थान में पहुँच जाता है तब उसी के निरालंब ध्यान होता है। गृहस्थ अवस्था में निरालंब ध्यान कभी नहीं हो सकता।

जो भणइ को वि एवं अत्थि गिहत्थाण णिच्चलं झाणं।
सुद्धं च णिरालंवं ण मुणइ सो आंयमो जइणो।। (382)

अर्थ : यदि कोई पुरुष यह कहे कि गृहस्थों के भी निश्चल, निरालंब और शुद्ध ध्यान होता है तो समझना चाहिये कि इस प्रकार कहने वाला पुरुष मुनियों को ही नहीं मानता है।

कहियाणि दिट्ठिवाए पडुच्च गुणठाण जाणि झाणाणि।
तम्हा स देसविरओ मुक्खं धम्मं ण झाएई।। (383)

अर्थ : दृष्टिवाद नाम के बारहवें अंग में गुणस्थान को लेकर ही ध्यान का स्वरूप बतलाया है जिससे सिद्ध होता है कि देशविरती गृहस्थ मुख्य धर्मध्यान का ध्यान नहीं कर सकता।

इसका कारण

किं ज सो गिहवंतो बहिरंतरगंथपरिमिओ णिच्चं।
बहुआरंभपउत्तो कह झायइ सुद्धमप्पाणं।। (384)

अर्थ : गृहस्थों के मुख्य धर्म्यध्यान न होने के कारण यह है कि गृहस्थों के सदाकाल बाह्य आभ्यंतर परिग्रह परिमित रूप से रहते हैं तथा आरंभ भी अनेक प्रकार के बहुत से होते हैं इसलिये वह शुद्ध आत्मा का ध्यान कभी नहीं कर सकता।

घरवावारा केई करणीया अत्थि ते ण ते सव्वे।
झाणट्ठियस्स पुरओ चिट्ठंति णिमीलियच्छिस्स।। (385)

अर्थ : गृहस्थों को घर के कितने ही व्यापार करने पड़ते हैं। जब वह गृहस्थ अपने नेत्रों को बंद कर ध्यान करने बैठता है तब उसके सामने घर के करने योग्य सब व्यापार आ जाते हैं।

अह ढिंकुलिया झाणं झायइ अहवा स सोवए झाणी।
सोवंतो झायव्वं ण ठाइ चित्तम्मि वियलम्मि।। (386)

अर्थ : जो कोई गृहस्थ शुद्ध आत्मा का ध्यान करना चाहता है तो उसका वह

ध्यान ढेकी के समान होता है। जिस प्रकार ढेकी धान कूटने में लगी रहती है परन्तु उससे उसका कोई लाभ नहीं होता उसको तो परिश्रम मात्र ही होता है इसी प्रकार गृहस्थों का निरालंब ध्यान शुद्ध आत्मा का ध्यान परिश्रम मात्र होता है अथवा शुद्ध आत्मा का ध्यान करने वाला वह गृहस्थ उस ध्यान के बहाने सो जाता है। जब वह सो जाता है तब उसके व्याकुल चित्त में वह ध्यान करने योग्य शुद्ध आत्मा कभी नहीं ठहर सकता। इस प्रकार किसी भी गृहस्थ के शुद्ध आत्मा का निश्चल ध्यान कभी नहीं हो सकता।

झाणाणं संताणं अहवा जाएइ तस्स झाणस्स।
आलंवण रहियस्स य ण ठाइ चित्तं थिरं जम्हा।। (387)

अर्थ : अथवा यदि वह सोता नहीं तो उसके ध्यानों को संतानरूप परंपरा चलती रहती है इसका कारण भी यह है कि निरालंब ध्यान करने वाले गृहस्थ का चित्त भी स्थिर नहीं रह सकता।

भावार्थ : गृहस्थ का चित्त स्थिर नहीं रहता इसलिये उसके निरालंब ध्यान कभी नहीं हो सकता। यदि वह गृहस्थ निरालंब ध्यान करने का प्रयत्न करता है तो निरालंब ध्यान तो नहीं होता परन्तु किसी भी ध्यान की संतान परंपरा चलती रहती है।

गृहस्थों के करने योग्य ध्यान

तम्हा सो सालंवं झायउ झाणं पि गिहवई णिच्चं।
पंच परमेट्ठिरूवं अहवा मंतक्खर तेसिं।। (388)

अर्थ : इसलिये गृहस्थों को सदाकाल आलंबन सहित ध्यान धारण करना चाहिए। या तो उसे पंच परमेष्ठी का ध्यान करना चाहिये अथवा पंच परमेष्ठी के वाचक मंत्रों का ध्यान करना चाहिये।

जइ भणइ को वि एवं गिहवावारेसु वट्टमाणो वि।
पुण्ण अम्ह ण कज्जं जं संसारे सुपाडेई। (389)

अर्थ : कदाचित् कोई गृहस्थ यह कहे कि यद्यपि हम गृहस्थ व्यापारों में लगे रहते हैं तथापि हमें सावलंब ध्यान कर पुण्य उपार्जन करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि पुण्य उपार्जन करने से भी तो इस जीव को संसार में ही पड़ना पड़ेगा।

ऐसा कहने वाले के लिए आचार्य उत्तर देते (मैथुन से 9 लाख जीवों का घात)

मेहुणसण्णारूढो मारइ णवलक्ख सुहम जीवांई।

इय जिणवरेहिं भणियं उज्झंतरणिग्गंथरूवेहिं।। (390)

अर्थ : आचार्य कहते हैं कि देखो जो पुरुष मैथुन संज्ञा को धारण करता है अपनी स्त्री का सेवन करता है वह गृहस्थ नौ लाख सूक्ष्म जीवों का घात करता है ऐसा बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहा है। इसके सिवाय-

गेहे वट्टंतस्स या वावारसयाई सया कुणंतस्स।

आसवइ कम्म मसुहं अट्टरउद्दे पवत्तस्स।। (391)

अर्थ : जो पुरुष घर में रहता है और सदकाल गृहस्थी के सैकड़ों व्यापार करता रहता है वह आर्तध्यान और रौद्रध्यान में भी अपनी प्रवृत्ति करता रहता है इसलिये उसके सदाकाल अशुभ कर्मों का ही आस्रव होता रहता है।

जई गिरिणई तलाए अणवरयं पविसए सलिलपरिपुण्णं।

मण वयतणुजोएहिं पविसइ असुहेहिं तह पावं।। (392)

अर्थ : जिस प्रकार किसी पर्वत से निकलती हुई नदी का पानी किसी जल से भरे हुए तालाब में निरन्तर पड़ता रहता है उसी प्रकार गृहस्थी के व्यापार में लगे हुए पुरुष के अशुभ मन वचन काय इन तीनों अशुभ योगों द्वारा निरंतर पाप कार्यों का आस्रव होता है।

गृहस्थों के लिए आचार्य का उपदेश-पुण्यार्जन

जाम ण छंठइ गेहं ताम ण परिहरइ इंतयं पावं।

पावं अपरिहरंतो हेओ पुण्णस्स ना चयउ।। (393)

अर्थ : इस प्रकार ये गृहस्थ लोग जब तक घर का त्याग नहीं करते गृहस्थ धर्म को छोड़कर मुनि धर्म धारण नहीं करते तब तक उनसे ये पाप छूट नहीं सकते। इसलिये जो गृहस्थ पापों को नहीं छोड़ना चाहते उनको कम से कम पुण्य के कारणों को तो नहीं छोड़ना चाहिये।

भावार्थ : गृहस्थों को सदाकाल पाप कर्मों में ही नहीं लगे रहना चाहिये। किन्तु साथ में जितना कर सके उतना पुण्य कर्मों का भी उपार्जन करते रहना चाहिये तथा पुण्य उपार्जन करने के लिये सावलंबन ध्यान वा भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा अथवा सुपात्र दान देते रहना चाहिये।

मामुक्क पुण्णहेउं पावस्सासवं अपरिहरंतो य।

बज्झइ पावेण णरो सो दुग्गइ जाइ मरिउणं।। (394)

अर्थ : जो गृहस्थ पाप रूप आस्रवों का त्याग नहीं कर सकते अर्थात् गृहस्थ धर्म छोड़ नहीं सकते उनको पुण्य के कारणों का त्याग कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि जो मनुष्य सदाकाल पापों का बंध करता रहता है वह मनुष्य मर कर नरकादिक दुर्गति को ही प्राप्त होता है।

कैसा पुरुष पुण्य के कारणों का त्याग कर सकता है -

पुण्णस्स कारणाइं पुरिसो परिहरउ जेण णियचित्तं।

विसयकसायपउत्तं णिग्गहियं हयपमाएण।। (395)

अर्थ : जिस पुरुष ने अपने समस्त प्रमाद नष्ट कर दिये हैं तथा इन्द्रियों के विषय और कषायों में लगे हुए अपने चित्तको जिसने सर्वथा अपने वश में कर लिया है ऐसा पुरुष अपने पुण्य के कारणों का त्याग कर सकता है।

भावार्थ : पुण्य के कारणों का त्याग सातवें गुणस्थान में होता है। इससे पहले नहीं होता इसलिये गृहस्थों को तो पुण्य के कारण कभी नहीं छोड़ने चाहिये।

गिहवावारविरत्तो गहियं जिणलिंग रहियसपमाओ।

पुण्णस्स कारणाइं परिहरउ सयावि सो पुरिसो।। (396)

अर्थ : जिस पुरुष ने गृहस्थ के समस्त व्यापारों का त्याग कर दिया है जिसने भगवान् जिनेन्द्रदेव का निर्ग्रन्थ लिंग धारण कर लिया है तथा निर्ग्रंथ लिंग धारण करने के अनंतर जिसने अपने समस्त प्रमादों का त्याग कर दिया है। ऐसे पुरुष को ही सदा के लिए पुण्य के कारणों का त्याग करना उचित है, अन्यथा नहीं।

भावार्थ : प्रमादों का त्याग सातवें गुणस्थान में होता है। सातवें गुणस्थान में ही वे मुनि उपशम श्रेणी अथवा क्षपक श्रेणी चढ़ते हैं। उपशम श्रेणी में कर्मों का उपशम होता रहता है और क्षपक श्रेणी में कर्मों का क्षय होता रहता है। इसलिये वहाँ पर पुण्य के कारण अपने आप छूट जाते हैं। गृहस्थों को पुण्य के कारण कभी नहीं छोड़ने चाहिये।

असुहस्स कारणेहिं य कम्म छक्केहि णिच्च वट्टंतो।

पुण्णस्स कारणाइं बंधस्स भयेण णेच्छंतो।। (397)

ण मुणइ इय जो पुरिसो जिणकहियपयत्थणवसरूवं तु।
अप्पाणं सुयणमज्झे हासस्स य ठाणयं कुणइ।। (398)

अर्थ : यह गृहस्थ अशुभ कर्मों के आने के कारण ऐसे असिमसि कृषि वाणिज्य आदि छहों कर्मों में लगा रहता है अर्थात् इन छहों कर्मों के द्वारा सदाकाल अशुभ कर्मों का आस्रव करता रहता है तथापि जो केवल कर्मबंध के भय से पुण्य के कारणों को करने की इच्छा नहीं करता, कहना चाहिये कि वह पुरुष भगवान् जिनेन्द्रदेव के कहे हुए नौ पदार्थों के स्वरूप को भी नहीं मानता, तथा वह पुरुष अपने को सज्जन पुरुषों के मध्य में हँसी का स्थान बनाता है।

भावार्थ : वह हँसी का पात्र होता है। इसलिये किसी भी गृहस्थ को पुण्य के कारणों का त्याग नहीं करना चाहिये।

पुण्य के भेद

पुण्णं पुव्वायरिया दुविहं अक्खंति सुत्तउत्तीए।
मिच्छपउत्तेण कयं विवरीयं सम्म जुत्तेण।। (399)

अगर्थ : पूर्वाचार्यों ने अपने सिद्धान्त सूत्रों के अनुसार उस पुण्य के दो भेद बतलाये हैं। एक तो मिथ्यादृष्टि पुरुष के द्वारा किया हुआ पुण्य और दूसरा इसके विपरीत सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया हुआ पुण्य।

मिथ्यादृष्टि के द्वारा किये हुए पुण्य और उसके फल –

मिच्छादिटठीपुण्णं फलइ कुदेवेसु कुणरतिरिएसु।
कुच्छिय भोगधरासु य कुच्छियपत्तस्स दाणेणे।। (400)

अर्थ : मिथ्यादृष्टि पुरुष प्रायः कुत्सित पात्रों को दान देता है। इसलिये वह पुरुष उस कुस्सित दान के फल से कुदेवों में उत्पन्न होता है, कुमनुष्यों में उत्पन्न होता है, नीचे तिर्यंचों में उत्पन्न होता है और कुभोग भूमियों में उत्पन्न होता है।

8 मूलगुण व 12 व्रत युक्त श्रावक भी नहीं होता पूर्ण धार्मिक

(4 था गुणस्थान से धर्म प्रारम्भ, 5वाँ गुणस्थान में भद्रध्यान होता है धर्मध्यान नहीं)

– आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत....)

'वस्तु स्वरूप धर्म होने से, हर द्रव्य होता है धर्ममय।
'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया', से हर जीव भी होता धर्ममय।।
शुद्ध नय से यह कथन है, व्यवहार नय से भी जानना विधेय।
चौदहवें गुणस्थान से परे होते, शुद्ध जीव इससे पूर्व संसारी जीव।।(1)

परम सत्य स्वरूप षट् द्रव्य व, सप्त तत्त्व (व) नवपदार्थ का श्रद्धान।
देव-शास्त्र-गुरु श्रद्धान सहित, स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान से होता सम्यकत्व।।
गाथा-भयविसण मल विवज्जिय संसार-शरीर भोग णिव्विणो।
अट्ठगुणंग समग्गो दंसण सुद्धो हु पंचगुरु भत्तो।।(5) रयणसागर
सप्तभय व्यसन रहित पच्चीस मलदोष रहित (होता) सम्यकत्व।
संसार-शरीर भोग विरक्त अष्टगुण, अंग युक्त पंचगुरुभक्ति सहित।।(2)

गाथा – जो जो तसवहाउ विरओ णो विरओ तह य थावरवहाओ।
एक्क समयम्मि जीवो विरयाविरत्ति जिणु कहई।। (351, भावसंग्रह)

जो त्रसबध से विरक्त न विरक्त होता है स्थावरबध से।
वह होता है विरताविरति, श्रावक ऐसा कहा जिनदेव ने।।
पंचाणुव्रत सहित बारहव्रत से सहित होता श्रावक।
तथापि आरम्भ-परिग्रह युक्त आर्त-रौद्र ध्यान संयुक्त।।(3)

अतएव ऐसा श्रावक को भी, न होता है पूर्ण धर्म ध्यान।
पाप दूर करने हेतु करता, दानपूजादि भद्रध्यान।।
देव-पूजा-गुरु पास्ति स्वाध्याय, संयम, तप व दान।
प्रत्येक दिन करता है श्रावक, स्व-पाप दूर निमित्त।।(4)

तथापि प्रत्याख्यान व संज्वलन कषाय से सहित।
नव नो कषाय से सहित अतएव, न होता पूर्णधर्मध्यान।।
आहार-भय-मैथुन-परिग्रह संज्ञा, सहित करता विभिन्न काम।
व्यापार-कृषि-पढ़ाई-नौकरी, औद्योगिक आदि पापात्मक काम।।(5)
भोगोपभोग व यानवाहन व, खान फैक्ट्री के करते काम।
जिससे त्रस-स्थावर जीव मरते, होते विविध पर्यावरण दूषण।।
इससे भी विभिन्न समस्याएँ होती, ग्लोबलवर्मिंग व रोग।
अतिवृष्टि व अनावृष्टि भूकम्प, से लेकर सुनामि तक।।(6)
अतएव ही दो कल्याणक युक्त, पंचमगुणधर्मीस्थानवर्ती तीर्थंकर।
अंतरंग-बहिरंग परिग्रह त्यागकर, बनते धर्म हेतु मुनिश्वर।
भोगोपभोग व आरम्भ-परिग्रह युक्त तीर्थंकर भी न होते पूर्णधर्मात्मा।
किन्तु बहिरंग से ही जो धर्म पालते, वे कैसे होंगे पूर्ण धर्मात्मा।।(7)
कदाचित गधे के भी सिंग होना, संभव है तीन काल में।
किन्तु गृहस्थों (श्रावकों) के श्रेष्ठ/(शुद्ध) ध्यान, नहीं संभव कहा आचार्यों ने।
यह वर्णन करणानुयोग सम्मत, जो है परम यथार्थ।
परम यथार्थ के परिज्ञान हेतु, ''सूरी कनक'' ने बनाया काव्य।।(8)

ओबरी 22.12.2017 रात्रि 09:41

सातिशय पुण्य से पाप दूर व मोक्ष प्राप्ति
(परम सकारात्मकता)
(अशुभ (पाप) से परे शुभ (पुण्य) व दोनों से परे शुद्ध (मोक्ष)

- आचार्य कनकनंदी

(चाल : दुनिया में रहना है तो...क्या मिलिए.....)
पुण्य करो हे! पुण्य करो, पुण्य के बिना न पाप दूर।
प्रकाश बिना न तम दूर, शुभ बिना न अशुभ दूर।।
अशुभ-शुभ व शुद्ध भाव, जीवों के होते तीनों भाव।

एक समय में होते एक भाव, पंचम (काल) में अशुभ-शुभ भाव।।(1)
शुभ न करो तो अशुभ होगा, संसार में केवल दुःख होगा।
अन्याय-अत्याचार-पापाचार होंगे, शोषण से युद्ध तक होंगे।।
इससे परे करो हे! शुभ भाव, श्रद्धा-प्रज्ञा युक्त सदाचार।
देव शास्त्र गुरु के समादार, दया-दान-सेवा व परोपकार।।(2)
हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील त्याग, परिग्रह प्रति मोह-ममत्व त्याग।
सप्त व्यसन व सप्त मद त्याग, सादाजीवन व उच्चभाव कर।।
सभी जीव प्रति मैत्री भाव धर, किसे भी दुःख न हो भाव करो।
गुणी जीव के प्रति प्रमोद भाव कर, गुण-गुणी का समादार करो।।(3)
दुःखी जीव प्रति कृपा कर, दयादान-सेवा व रक्षा करो।
विपरीत वृत्ति से साम्य धर, राग-द्वेष-मोह (व) द्रोह नहीं करो।।
निःस्वार्थ भाव से ये भी करो, ख्याति-पूजा-लाभ से रहो दूर।
ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा से रहो दूर, प्रतिस्पर्द्धा व वर्चस्व नहीं कर।।(4)
इससे होगा सातिशय पुण्य कर्म, पाप-ताप-तनाव होंगे दूर।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश होंगे दूर, आनन्द उत्सव होंगे भरपूर।।
संतुष्टि-शांति-तृप्ति होगी, स्वयमेव प्रशंसा व कीर्ति होगी।
आत्म गौरव व उत्साह में वृद्धि, संवेग-वैराग्य में होगी वृद्धि।। (5)
जिससे शुभ भाव में होगी वृद्धि, साधु बन करो आत्मशुद्धि
जिससे आध्यात्मिक शक्ति बढ़ेगी, पाप-पुण्य नाश से मुक्ति मिलेगी।।
यह है आध्यात्मिक सार तत्त्व, अज्ञानी मोही (स्वार्थी) से अज्ञात सत्य।
भौतिकवाद परे परम सत्य, 'कनक' का लक्ष्य स्व-आत्म तत्त्व।।(6)

ओबरी 25.12.2017 रात्रि 07.45

मदद करने से खुश रहता है मन

क्या आप अक्सर उदास रहते हैं और हमेशा खुशी की तलाश में रहते हैं? अगर आपका जवाब हाँ में है तो दूसरों की मदद करके उनके चेहरे पर मुस्कान लाने का काम शुरू कर दीजिए। खुशी खुद ब खुद आपकी झोली में आ गिरेगी। जी हाँ! दूसरों की मदद करने और उन्हें खुश रखने के काम करने से व्यक्ति खुशमिजाज हो जाता है, ऐसा

एक्सपर्ट्स ने एक हालिया सर्वे के दौरान पाया है। सर्वे में देखा गया है कि जब कोई व्यक्ति किसी की मदद करता है या उसे दान में कुछ देता है तो उसके दिमाग में फील गुड कैमिकल्स का उत्सर्जन होता है। यूनाइटेड हैल्थ ग्रुप नामक संगठन ने एक साल तक जिन लोगों पर यह अध्ययन किया उनमें से 96 फीसीदी ने यह बात मानी।

ख्याति-पूजा-लाभ प्रसिद्धि त्याग से मुझे प्राप्त लाभ

- आचार्य कनकनंदी

(चाल : क्या मिलिए.....आत्मशक्ति.....)

ख्याति-पजा-लाभ-प्रसिद्धि से नहीं होता है श्रेष्ठ शोध-बोध।
आत्मसाधना से न होती आत्मविशुद्धि, जिससे न होता आत्मलाभ।।
ख्याति-पूजादि हेतु चाहिए धन-जन तथाहि मंच-माईक।
पाण्डाल-विज्ञापन-होर्डिंग-प्रदर्शन-निमन्त्रण पत्रिका व भोजन।। (1)

इस हेतु करने होते हैं चन्दा-चिट्ठा से ले बोली व याचना।
दबाव-प्रलोभन व भय उत्तेजना, आदि बहुत विडम्बना।।
इस हेतु होते संकल्प-विकल्प-संक्लेश द्वंद्व व विषमता।
धनी गरीब में पक्षपात से वाद-विवाद से ले विराधना।।(2)

इससे होते हैं राग-द्वेष-मोह, ईर्ष्या-तृष्णा-घृणादि कुभावना।
आकर्षण-विकर्षण वैर-विरोध से ले कारागार की यंत्रणा।।
ये सब मैंने भी किया अनुभव, इतिहास-पुराण में भी पढ़ा।
विभिन्न समाचार माध्यम से भी जाना, अनेक लोगों से भी सुना (3)

केवल प्रसिद्धि से भी होती है उपरोक्त कुछ समस्याएँ।
भीड़ में (से) होते विविध प्रदूषण व अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षाएँ।।
सुनना पड़ता, सुनाना पड़ता, लेन-देन भी होता।
मानना पड़ता, मनाना पड़ता, मान-सम्मान का ध्यान होता।।(4)

इससे होता समय-शक्ति का, दुरुपयोग से अपव्यय।
जिससे न होते शोध-बोध से लेकर आत्म लाभ।।
प्रसिद्धि की इच्छा होती अहंकार, स्वयं को दिखाने हेतु श्रेष्ठ।

प्रसिद्धि बढ़ने से अहंकार बढ़ता, प्रसिद्धि रक्षा हेतु होती चिंता।। (5)

इसलिए तो तीर्थंकर बुद्ध से महान् दार्शनिक-लेखक-वैज्ञानिक।

प्रसिद्धि प्राप्ति की इच्छा न रखते, भले हो जाये स्वयं प्रसिद्धि/प्रसिद्धि।।।

अतएव मैं प्रसिद्धि न चाहूँ, सिद्धि हेतु ही करूँ साधना।

स्वात्मोपलब्धि ही मेरी सर्वोपलब्धि, 'कनक' की यही भावना।।(6)

इससे मुझे मिल रहे हैं अनेक लाभ शोध-बोध व आत्मबोध।

अध्ययन-अध्यापन-साहित्य लेखन देश-विदेशों में प्रभाव।।

समता-शान्ति-निस्पृहता बढ़ रही मौन-एकान्त-साधना।

सभी प्रकार के लोग पा रहे लाभ, छोड़ के स्वार्थ व संकीर्ण सीमा।। (7)

ओबरी, 12.01.2018 रात्रि 10:50

संदर्भ-

मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।

तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला घृतिः।।71।। समाधि

भावार्थ : जब यह जीव आत्मस्वरूप में डाँवाडोल न रहकर स्थिर हो जाता है तभी मुक्ति की प्राप्ति कर सकता है। आत्मस्वरूप में स्थिरता के बिना मुक्ति की प्राप्ति होना असंभव है।।71।।

जनेभ्यो वाक्, ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।

भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत।।72।।

भावार्थ : आत्मस्वरूप में स्थिरता के इच्छुक मुमुक्षु पुरुषों को चाहिये कि वे लौकिक जनों के संसर्ग से अपने को प्रायः अलग रखें, क्योंकि लौकिक-जन जहाँ जमा होते हैं वहाँ वे परस्पर में कुछ-न-कुछ बातचीत किया करते हैं, बोलते हैं और शोर तक मचाते हैं। उनकी इस वचनवृत्ति के श्रवण से चित्त चलायमान होता है और उसमें नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगते हैं, जो आत्मस्वरूप स्थिरता में बाधक होते हैं- आत्मा को अपना अन्तिम ध्येय सिद्ध करने नहीं देते।।72।।

अभवच्चितविक्षेपः एकान्ते तत्वसंस्थितः।

अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः।।(36)

He in whose mind no disturbances occur and who is

established in the knowledge of the self-such an ascetic should engage himself diligently in the contemplation of his soul, in a lonely place)

संयमी-योगी को आलस्य निद्रादि को निरसन (जय) करके योग्य शून्य गृहादि में स्वात्मा का अभ्यास करना चाहिए। बाल्य मनुष्यादि रहित एकान्त स्थान में तथा अंतरंग राग, द्वेषादि रहित एकान्त-भाव से योगी को निजात्मा का ध्यान करना चाहिए। क्योंकि दोनों प्रकार की एकांत से रहित अवस्था में स्थित होने पर विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे आत्म-ध्यान नहीं हो पाता है।

समीक्षा : अनादिकाल से वह जीव स्व स्वरूप से बर्हिमुख होकर इन्द्रियाँ एवं मन के माध्यम से स्व-शक्ति का विघटन, बिखराव, ह्वास एवं क्षय कर रहा है। इसको ही बाह्य प्रवृत्ति, कुध्यान, अपध्यान, आर्तध्यान, रौद्र-ध्यान, संसारवर्धिनीध्यान कहते हैं। बाह्य से निवृत्ति होकर स्व में रमण रूप प्रक्रिया को ही सुध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, योग लीनता, समाधि आदि से अभिहित करते हैं।

इच्छा निरोधः ध्यानं, इच्छा का सम्यक् रूप से निरोध करना ध्यान है। उमास्वामी आ. श्री ने मोक्षध्यान में कहा भी है -

''एकाग्र चिन्ता निरोधोध्यानं'' चित्त को अन्य विकल्पों से हटाकर एक ही विषय में लगाने को ध्यान कहते हें। महर्षि पतन्जलि ने भी ध्यान का लक्षण कहते हुए पतंजलि योग दर्शन के प्रथम चरण में ही कहा है -

''योगश्चित्तवृत्ति निरोधः''

चित्त की-वृत्तियों का जो निरोध है वह योग कहा जाता है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है- समत्व योग उच्चते (2.48) बुद्धि की समता या समत्व को ही योग (ध्यान) कहते हैं अथवा ''योगः कर्मसु कौशलम्'' (2.50) अर्थात्? शुभाशुभ से मुक्त होकर कर्म करने की कुशलता को योग कहते हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त से यह सिद्ध होता है कि मन (बुद्धि, चित्त) की प्रवृत्ति अन्य-अन्य विषय से हटकर एक विषय में स्थिर भाव से केन्द्रीभूत हो जाना, लीन हो जाना, स्थिर हो जाना ही ध्यान है। अतएव ध्याता को ध्यान करने के लिये जो अनिवार्य तथा प्रथम एवं प्रधान नियम है उसका वर्णन आचार्य पूज्यपाद स्वामी समाधि तन्त्र में निम्न प्रकार कहे हैं:-

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते।।95।।

मनुष्य की बुद्धिः में जो बात दृढ़ता से बैठ जाती है उसको उसी विषय का श्रद्धान या रुचि विश्वास हो जाता है और जहाँ रूचि पैदा हो जाती है, उसी विषय में सोते जागते तथा पागलपन या मूर्छित दशा में भी उसका मन रमा रहता है।

आत्मदृष्टा पुरुष की बुद्धि में आत्मा समाया हुआ होता है। इस कारण सब दशा में उसका मन अपने आत्मा में ही लगा रहता है। बहिरात्मा की बुद्धि अपने शरीर की ओर लगी रहती है, अतः अपने शरीर को ही अपने सर्वस्व (आत्मा) की श्रद्धा से देखा करता है, इसी कारण सोते जागते आदि सभी अवस्थाओं में उसका मन शरीर में ही लीन रहा करता है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।
यस्मान्निवर्त्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः।।96।। समाधि तंत्र

मनुष्य की बुद्धि में जो बात ठीक नहीं समाती उस बात में उसको श्रद्धा रूचि नहीं होती और जिस विषय की श्रद्धा नहीं होती है उस विषय में उसका मन भी लीन नहीं होता। तदनुसार अन्तरात्मा की बुद्धि में अपनी आत्मा समायी रहती है। अतः शरीर में उसकी रूचि नहीं होती इसी कारण से वह आत्मा में लीन रहता है, इसके विपरित बहिरात्मा की समझ में शरीर के सिवाय आत्मा और कुछ नहीं है। अतः उसकी श्रद्धा आत्मा में नहीं होती। इसी कारण उसका मन भी आत्मा में लीन नहीं होता। यह जीव अनादिकाल से संसार शरीर भोग, उपभोग इन्द्रिय विषय के राग-रंग में रचा-पचा अनुभव किया सुना है। इसलिये वह विषय अनुभूत होने के कारण स्व स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्वयंमेव सहजरूप से विषयों की ओर हो जाती है। परन्तु इससे विपरीत स्वस्वरूप का भान अनुभव नहीं होने के कारण स्व स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्व में सरलता से नहीं होती है। इसलिये बाह्य द्रव्यों से चित्त को हटाकर स्व में स्थिर करने के लिए स्वयं का मनन चिन्तन परिज्ञान सतत करना चाहिये। पूज्यपाद स्वामी ने समाधि तन्त्र में कहा है-

तदबृयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।52।।

आत्म श्रद्धालु को वह आध्यात्मिक चर्चा करनी चाहिए, वह आत्मा सम्बन्धी ही बातें अन्य विद्वानों से पूछनी चाहिए। उसी आध्यातिमक विषय की चाह रखनी चाहिए। उसी आध्यातिमक विषय में सदा तत्पर, तैयार या उत्सुक रहना चाहिये जिससे अपनी आत्मा का अज्ञान भाव छोड़कर ज्ञान भाव प्राप्त हो।

गीता में कर्मयोगी नारायण श्रीकृष्ण ने भी ध्यान के विषय में वर्णन करते हुए कहा है -

अविद्या, रागद्वेष इन्द्रिय विषय में रमायमान चित्त सर्वदा चंचल एवं क्षुभित रहता है इसलिये मन को स्थिर करना शीघ्र सहज साध्य नहीं है। मन को स्थिर करने के लिए जब श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं तब अर्जुन श्रीकृष्ण को निम्न प्रकार अपना भाव प्रकट करते हैं।

चंच्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।34।।

हे कृष्ण यह मन चंचल, हठीला बलवान और 'दृढ़' है। वायु के समान अर्थात् हवा को गठरी में बाँधने के समान इसका निग्रह करना मुझे अत्यन्त दुष्कर दिखता है।

श्रीकृष्ण अर्जुन की वास्तविक परिस्थिति एवं कठिनाईयों को अनुभव करके निम्न प्रकार सम्बोधन करते हैं -

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते।।35।।
असंयतात्मना योगो दुष्प्रावृत इति में मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्याऽवाप्तुमुपायतः।।36।।

हे महाबाहु अर्जुन! इसमें संदेह नहीं, कि मन चंचल है और उसका निग्रह करना कठिन है, परन्तु है कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से यह स्वाधीन किया जा सकता है। मेरे मत में जिसका अन्तःकरण काबू में नहीं, उसको (इस साम्यबुद्धि रूप) योग का प्राप्त होना कठिन है, किन्तु अन्तःकरण को काबू में रखकर प्रयत्न करते रहने पर, उपाय से (इस योग का) प्राप्त होना सम्भव है।

जैसे जल स्वभावतः तरल एवं निम्नगामी है उसी प्रकार मन भी निम्नगामी है। मन की प्रवृत्ति विषय, कषाय में, राग-द्वेष में, राग रंग में होना सहज-सरल है। जैसे जल

को घन या ऊर्ध्वगामी बनाना श्रम साध्य एवं समय साध्य है, उसी प्रकार मन को निर्मल एवं स्थिर करना श्रम साध्य एवं समय साध्य है। जब जल तरल रहता है तब जल स्वाभाविक रूप से अधोगमन करता है परन्तु जब घन तुषार रूप परिणमन करता है तब जल अधोगमन नहीं करता है। उसी प्रकार मन, ज्ञान, वैराग्य, संयम, मनन-चिंतन, अनुप्रेक्षा अभ्यास के बल से दृढ़ घनीभूत हो जाता है। तब मन अधोगामी (विषय कषायों की ओर प्रवृत्ति करना) चल (अस्थिर, क्षुभित, अशांत व्यथित) नहीं रहता है। मन को निर्मल, स्थिर, शांत बनाना विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे क्लिष्ट कार्य है। मन चंचल होने का कारण राग-द्वेष है, एवं मन स्थिर होने का कारण राग-द्वेष की निवृत्ति है।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम्।
स पश्यत्यात्मस्तत्त्वं तत्तत्वं नैतरो जनः।।35।। समाधि तन्त्र

जिस पुरुष का मन रूपी जल, राग-द्वेष, मोह, मद, क्रोध, लोभ, माया आदि की लहरों से चंचल नहीं है, वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य मनुष्य उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रेत्ततः।।36।।

मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के क्षोभ से रहित मन आत्मा का स्वभाव है और मोह तथा राग-द्वेष से व्याकुल मन आत्मा की भ्रान्ति अर्थात् भ्रम है। इसलिए राग-द्वेष मोह से रहित शुद्ध मन बनाना चाहिए। राग, द्वेष, मोह आदि दुर्भावों से मन को मलीन नहीं करना चाहिये।

अविद्याभ्यास संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदैव ज्ञान संस्कारै, स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते।।37।।

मन अज्ञान के अभ्यास के संस्कारों द्वारा अपने वश में न रहकर इन्द्रियों के विषय भोगों में फँस जाता है वही मन आत्मा शरीर के भेद-विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म स्वरूप में ठहर जाता है।

गुणीगुरु से सुयोग्य शिष्य होते स्वयंमेव प्रेरित

- आचार्य कनकनंदी

(चाल : भातुकली.....आत्मशक्ति.....)

श्रद्धा-प्रज्ञा युक्त विनय व्यवहार करते (हैं) मानव अन्य से।
जब वे अनुभव करते हैं स्वयं न श्रेष्ठ उन से।।
छोटी रेखा स्वयंमेव छोटी दिखाई देखी है बड़ी रेखा से।
सूर्य-प्रकाश से चन्द्र-प्रकाश स्वयमेव विलिन हो जाता।।(1)

तथाहि तीव्र-मन्द शब्द सम महान-क्षुद्र में होता है।
''नमो गुरुभ्य गुणगुरुभ्य'' से महान् गुणी पूज्य होता है।।
फल से भारी शाखायें यथाहि स्वयंमेव नम्र होती हैं।
गुणों से भरीत महान् व्यक्ति स्वयंमेव नम्र होते हैं।।(2)

जब मानव स्व-पर का मूल्यांकन निस्पक्ष से सही करते हैं।
स्वयं को यदि जिससे कम पाते उनका विनय करते हैं।।
यथा गौतम गणधरस्वामी, अंगुलमाल, व रत्नाकर।
स्वयं के दोष व गुरु के गुण जाने (माने) गुरु से बने विनम्र।।(3)

ऐसे विनय ही सही विनय है अन्यथा लौकिकाचार है।
ऐसे विनय से ही शिष्य/(भक्त) गुरु की सेवा भक्ति करते हैं।।
ऐसे विनय से होता भाव पावन समर्पण भाव होता है।
जिससे गुरु की सेवा भक्ति से सातिशयपुण्य पाते हैं।।(4)

जिससे होता है सर्वोदय आत्मविश्वास भी बढ़ता है।
महान् लक्ष्य के सम्पादन हेतु उत्तम विचार भी बढ़ता है।।
गुरु के आशीर्वाद मार्गदर्शन में शिष्य भी आगे बढ़ते हैं।
स्व-पर-विश्वकल्याण करके इहपरलोक सुखी होते हैं।।(5)

प्रज्वलीत-दीपक से यथा बुझे हुए दीपक जलते हैं।
तथाहि महान्-गुरु से योग्य-शिष्य भी महान् बनते हैं।।
गुरु होते हैं तरणतारण ब्रह्मा-विष्णु व महेश्वर।
ऐसे गुरुत्व को पाने हेतु 'कनक' सदा तत्पर।।(6)

ओबरी 01.01.2018 मध्यान्ह 1:31

(यह कविता भक्त-शिष्य नीलेश व वर्षा की भावना से प्रेरित होकर बनी। उन्होंने स्वप्रेरणा से मुझे अनुरोध किया हे! गुरुदेव! आपकी निस्पृहता व ज्ञान साधना में बाधा न पहुँचे किन्तु विकास हो इस हेतु हम जीवनभर आपकी सेवा भक्ति व्यवस्था करना चाहते हैं।)

ध्यान मुनि हेतु परम कर्त्तव्य-आत्मध्यानी मुनि ही यथार्थ से धर्मध्यानी

(चतुर्थ गुणस्थानवर्ती-श्रावक व छट्ठा गुणस्थानवर्ती मुनि भी उपचार से धर्मध्यानी)

- आचार्य कनकनंदी

(चाल : भातुकली.....आत्मशक्ति.....)

आत्मध्यानी मुनि होते हैं धर्मध्यानी, जो राग-द्वेष-मोह से रहित हैं।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश रहित, जो होते ख्याति-पूजा-लाभ रहित।।

गाथा -मुक्खं धम्मज्झाणं उत्तं तु पमायविरहिए ठाणे।
देस विरए पमत्ते उवयारेणेव णायव्वं।।(371) भाव संग्रह

उत्तम क्षमादि-मार्दव-आर्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-त्याग-सहित/(परिणत)
आकिंचन्य व ब्रह्मचर्य परिणत मुनि होते हैं धर्मध्यान युक्त।।(1)

गाथा -दहलक्खणसंजुत्तो अहवा धम्मोत्ति वण्णिओ सुत्ते।
चिंता जा तस्स हवे भणियं तं धम्मझाणुत्ति।।(372)

वस्तु स्वभाव धर्म होने से तथा, सभी वस्तुओं में स्व आत्मा मुख्य।।
अतएव स्वशुद्धात्मा ध्यान रत मुनि, होते यथार्थ से धर्मध्यान युक्त।।
ऐसे ध्यानी मुनि को होता है, निरालम्बध्यान जो आत्मा के आश्रित।
स्व-आत्मा में/(से)स्व-आत्मा द्वारा, स्व-आत्मा का होता ध्यान है।।(2)

गाथा -जं पुणु वि णिरालंवं तं झाणं गयपमाय गुणठाणे।
चत्तगेहस्स जायइ धरियं जिणलिंगरुवस्स।।(381)

संकल्प-विकल्प सहित मुनियों को भी, नहीं होता है यह धर्मध्यान।
इस ध्यान के साधन हेतु, व्रत-नियम-भावना-चिंतन-ज्ञान।।

गाथा -जाम वियप्पो कोई जायइ जोइस्स झाण जुत्तस्स।
ताम ण सुण्णझाणं चिंता वा भावणा अहवा।।(83)आ.सा.

ऐसे ध्यानी मुनि होते हैं श्रेष्ठ जो नहीं करते संकल्प-विकल्प।
श्रावक से ले छट्टे गुणस्थानवर्ती मुनि से भी वे होते श्रेष्ठ-ज्येष्ठ।।(3)
अट्ठाबीस मूलगुण पालन रत जो, मुनि अभी नहीं हैं ध्यानरत।
उनसे भी अधिक श्रेष्ठ-ज्येष्ठ हैं, जो स्व-शुद्धात्म ध्यान रत।।
पंचपरमेष्टीओं के वन्दन पूजन, आराधना जाप से भी (यह) ध्यान श्रेष्ठ।
वन्दन आदि स्वावलम्बन ध्यान है जो निरालम्ब ध्यान हेतु निमित्त।।(4)

गाथा- मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए।।(48) द्र.सं.)
जंकिंचिवि चिंततो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धू णय एयत्तं तदा हुतं तस्स णिच्छयं झाणं।। (55 द्र.सं.)
मा चिट्ठह मा जंपह-मा चिंतह किं वि जेण होई थिरो।
अप्पा अप्पाम्मि रओ इणमेव परं हवे झाणं। (56 द्र.सं.)
इससे मुझे श्रेष्ठ शिक्षा मिले, मैं करूँ सदा सर्वश्रेष्ठ साधना।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश जनक, त्यागूँ मैं समस्त विडम्बना।। (5)

जिस भी कारण से राग-द्वेष-मोह, ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा होते उत्पन्न।
उन सभी कारणों को त्यागूँ जिससे/ (में) होती ख्याति-पूजा-लाभ भावना। (तमन्ना)
यह सब मैंने जैन-हिन्दू-बौद्ध-ग्रन्थों में, पढ़ा तथाहि आधुनिक विज्ञान में।
बालकाल से मेरा यह अनुभव बढ़ रहा, 'कनक' अतः दृढ़ स्व-लक्ष्य में।।(6)

ओबरी 29.12.2017 रात्रि 08:00

निस्पृह सन्त की साधना V/s मोही सन्त की प्रभावना
(अनन्त तीर्थंकर आदि साधु अवस्था में भौतिक निर्माण क्यों नहीं करते?)

- आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

अभी तक हो गये अनन्त तीर्थंकर-गणधर-आचार्य-पाठक साधु।
गौतम बुद्ध व वैदिक ऋषि ईसा व रामकृष्ण से कृष्णमूर्ति।।
गृहस्थ अवस्था में इनमें अधिकतर थे राजा से लेकर साहुकार तक।
गृहस्थ अवस्था के समस्त वैभव त्यागकर बन गये वे निस्पृह संत।।(1)

गृहस्थ अवस्था में भले वे निर्माण किये हो मन्दिर व धर्माशालादि।
किन्तु साधु बनने के अनन्तर नहीं बनाये क्यों मन्दिर धर्मशालादि?।।
वे तो थे अधिक दयालु परोपकारी साधु बनने से और अधिक।
तथापि क्यों नहीं किया भौतिक निर्माण इसका समाधान है निम्नोक्त।।(2)

गृहस्थ में नहीं थे पूर्ण त्यागी किन्तु पूर्ण त्याग से बने सन्यासी।
त्यागे हुए को नहीं ग्रहण करते जो यथार्थ से होते निस्पृह सन्यासी।।
भौतिक त्याग सह होता राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोधादि विभाव त्याग।
ख्याति-पूजा-लाभ व याचना-संग्रह, दबाव-प्रलोभन व संक्लेश-द्वन्द।।(3)

आरम्भ-परिग्रह व आदेश निर्देश आकर्षण-विकर्षणमय भौतिक काम।
भौतिक विनिमय रूप समस्त काम नौकर से यान-वाहन काम।।
इन सब से होती द्रव्य-भाव हिंसा तथाहि विविध प्रदूषण।
जिससे न होती आत्मविशुद्धि समता-शान्ति से ध्यान-अध्ययन।।(4)

इन सब कारणों से वे न रहेंगे सही साधु हो जायेंगे वे गृहस्थ सम।
इससे उनका होगा आत्मपतन वे न रहेंगे गृहस्थ व साधु-श्रमण।।
ऐसी अवस्था में वे हो जायेंगे भ्रष्ट त्रिशंकु समान होगी अवस्था।
माया मिली न राम अनुसार इह पर लोक में भारी दुर्दशा।।(5)

ऐसे जो होते निस्पृह साधक उनके अनुयायी ही बनते अधिक।

वे स्वेच्छा से प्रेरित होकर करते दान-दया-सेवा-परोपकार त्याग।।
इससे विपरीत जो काम करते उनसे न होता स्व-पर-उपकार।
वे स्वयं संक्लेशित होते उनको मिलता अपमान से कारागार।। (6)
किन्तु जो होते रागी-द्वेषी-मोही (स्वार्थी) वे ये सभी करते रहते।
'लोभी गुरु लालची चेला' हुए नरक में ठेलमठेला रूप से दुःख सहते।।
श्रद्धा-प्रज्ञा व निस्वार्थी जन ऐसे साधु से दूर रहते।
अन्धश्रद्धालु व स्वार्थी जन ऐसे साधु से स्व-स्वार्थ साधते।।(7)
ऐसे साधु व अनुयायी से परम पावन धर्म होता है कलंकित।
इसलिए तो 'सूरी कनकनन्दी' ऐसे कार्यों से रहते विरक्त।।(8)

ओबरी, 04.01.2017 रात्रि 10:20

भाषा व द्रव्य-भावात्मक अन्धेरे की समालोचनात्मक कविता-

अन्धेरा (भौतिक व भावात्मक) की आत्मकथा

- आचार्य कनकनंदी

(चाल : 1. पूछ मेरा क्या नाम रे! .....4. जिया बेकरार है...)

अन्धेरा मेरा नाम है, अन्धत्व करना काम है...
दृश्यमान भी नहीं दिखता, ऐसा मेरा काम है...
मेरे प्रमुख दो भेद है, भौतिक व भावात्मक....
भौतिक होता जड़/(पुद्गल) मय, भावात्मक जीवमय/(चेतनामय)..(1)
भौतिक के भी अनेक नाम, अन्धकार, तिमिर, अन्धेरा है....
तमिस्र, ध्वान्त, तमस्, तम, सन्तमस, अन्धियारा नाम है....
भावात्मक मेरे अधिक नाम, मोहान्ध, कामान्ध, स्वार्थान्ध है...
क्रोधान्ध, मदान्ध, लोभान्ध, मायान्ध, ईर्ष्यान्ध, द्वेषान्ध है....(2)
भौतिक रूप में मैं चक्षुष्मान को भी देखने में बाधा डालता हूँ...
जिससे वे खुले आँख से भी, सम्मुख/(पास) की वस्तुओं को भी न देखते हैं,
मेरी उपस्थिति में निद्रा आती, शारीरिक क्रियाएँ भी मन्द होती...
यातायात से ले लिखना-पढ़ना, इत्यादि काम भी न सही होते...(3)

किन्तु निशाचर पशु-पक्षी जो विशेषतः माँसाहारी/(शिकारी) होते हैं....
उन्हें देखने में न समस्याएँ होती, वे तो अधिक शिकार भी करते हैं....
ऐसा ही जो मानव शिकारी होते, (अथवा) चोर-तस्कर-डाकू या गुण्डे...
वे भी अधिक सक्रिय होते, फैशनी-व्यसनी-वेश्या व जारज़....(4)
भौतिक से भी मेरा भावात्मक रूप, अधिक अन्धकारमय होता...
मोहान्ध आदि से जो ग्रसित होते, उन्हें तो कुछ न सूझता....
मेरे भौतिकमय में/(से) तो ज्ञानी-ध्यानी, करते अधिक आत्म साधना....
तन-मन-श्रम दूर हेतु, मनुष्य व शाकाहारी (प्राणी) लेते निद्रा...(5)
किन्तु भावात्मक अन्धकार के कारण, कोई भी न कर पाते अच्छे काम....
शाकाहारी हो माँसाहारी या, दिनचर हो या निशाचर जीव...
ऐसे जीवों को कहते हैं, अज्ञानी, कुज्ञानी व मूर्ख....
अज्ञ व अबोध, मुग्ध, मूढ़, जड़ व नेड़, मूक....(6)
मन्द, अप्राज्ञ, देवानांप्रिय, बेवकूफ व कद्दद....
धीवर्जित व बुद्धिविहीन आदि पर्यायवाची से अभिहित...
चक्षु से जो नहीं देखते हैं, या अन्धेरा से जो नहीं देखते...
वे भी हो सकते हैं सुज्ञानी, किन्तु मोहान्ध आदि (होते) महामूर्ख...(7)
ऐसे मेरे दोनों स्वरूपों को, विस्तार से भी जानने योग्य...
आत्मविकास हेतु प्रज्ञा ज्योति से, 'सूरी कनक' बनाया काव्य...
(ऐसे) मेरे दोनों स्वरूपों के, विनाश के रहस्य जानो....
भौतिक (तम) को भौतिक (ज्योति) से, भावात्मक को ज्ञान-वैराग्य (ज्योति) से हनो...(8)
भौतिक मेरा पुद्गलमय है, जो गलन-पूरण मय होता...
प्रकाशमय मेरा एक रूप से, अन्धकार नाश होता...
भावात्मक मेरा चैतन्यमय, जो परिणमनशील होता...
श्रद्धा-प्रज्ञा व चर्या द्वारा, मोहान्ध आदि का नाश होता...(9)

अन्धादपी महानध विषयान्धी कृते क्षणात्।
चक्षुषान्ध न जानाति विषयान्ध न केनचित्।।

अज्ञानतिमिराधानां ज्ञानांजनशलाकया।

चक्षुरंमीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

ओबरी, दिनांक 03.01.2018, रात्रि 11:00

हजारों वर्ष बहस के बाद तय हुआ कि

दिल बड़ा या दिमाग

मानव की उत्पत्ति का इतिहास हमेशा से शोध का विषय रहा है। इन सबमें मानव मस्तिष्क ने शोधकर्ताओं को सबसे ज्यादा आकर्षित किया है। क्या आप अंदाजा लगा सकते हैं कि इंसानों में मस्तिष्क और सोचने की क्षमता का विकास कब हुआ होगा। कई लोगों का जवाब पाँच से दस हजार साल पहले तक का होगा।

पर, हालिया शोध से यह बात सामने आयी है कि इंसानों में मस्तिष्क का विकास 75, 000 साल पहले ही हो चुका है और इसने इसकी मदद से कई उपलब्धियाँ हासिल की। यह शोध कोलोराडो विश्वविद्यालय के शोधकर्ता जॉन हॉफकर ने किया है। उन्होंने बताया कि मस्तिष्क में बदलाव पहली बार सोचने की असीमित क्षमता का विकास हुआ। इस सुपर ब्रेन की वजह से ही हमें पहली बार नये अन्वेषणों का पता चला और विलक्षणता हासिल हुई।

हॉफकर का कहना है कि मस्तिष्क हमारे जीवन में इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके बिना आज जो हम अंतरिक्ष में तरह-तरह के यान भेज रहे हैं, वह कभी मुमकिन नहीं हो पाता।

एक छोटी-सी घड़ी से लेकर विशाल जहाज सबकी खोज में मस्तिष्क की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। हॉफकर के मुताबिक, मानव मस्तिष्क में उत्तेजना या पहली हरकत लगभग 1.6 मिलियन यानी 16 लाख साल पहले उस वक्त हुई जब मानवों ने पत्थर की कुल्हाड़ी का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था। उन्होंने इसे हमारी आंतरिक सोच का पहला बाहरी नतीजा बतलाया। यानी इसी समय मस्तिष्क के इस्तेमाल से पहली बार किसी चीज की खोज या निर्माण होना शुरू हुआ। हॉफकर का कहना है कि 75, 000 साल पहले अफ्रीका में काफी तेजी से लोगों का इकट्ठा होना शुरू हो गया था और इस क्रम में मस्तिष्क का भी काफी तेजी से विकास होना शुरू हुआ।

- ईसा से 4000 वर्ष पूर्व : एक अज्ञात लेखक के अनुसार अफीम का सेवन करने के बाद दिमाग में अजीब हलचल होने लगती है और मनुष्य अजीबोगरीब व्यवहार करने लगता है।
- 2500 ईसा पूर्व : प्राचीन मिस्र के लोगों का मानना था कि दिल सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है शरीरी का। बुक ऑफ डेड (मृतकों की किताब) के अनुसार दिमाग को एक साधारण अंग की तरह ही माना जाता था।
- 2000 ईसा पूर्व : इस समय से जुड़े कई स्थलों पर दिमाग में ट्रेपैनेशन यानी एक तरह की शल्य क्रिया के प्रमाण मिले है। तांबे और आग्नेय पत्थरों की मदद से दिमाग में छेद किया जाता था। दक्षिण अमरीका के इंकन-पूर्व सभ्यता के काल में ऐसी शल्य क्रिया आम थी।
- 450 ईसा पूर्व : अल्कमेऑन नामक ग्रीक चिकित्सक ने पहली बार ज्ञात रूप से अपने बातों को साबित करने के लिए पशुओं की शल्य चिकित्सा की शुरुआत की। उनका मानना था कि दिल नहीं दिमाग संवेदना और स्वाद का केन्द्र था। जबकि इस समय तक के चिकित्सकों का मानना था कि दिल ही शरीर की महत्वपूर्ण क्रियाकलापों का केन्द्र है। अल्कमेऑन ने यह भी सिद्धांत रखा था कि रोशनी आँखों में ही होती है। 18वीं शताब्दी के मध्य तक चिकित्सक इसे ही सच मानते थे।
- 335 ईसा पूर्व : अरस्तु के अनुसार दिल ही संवेदना और स्वाद का केन्द्र था और दिमाग बस दिल के रेडियटर की तरह काम करता था।
- 300 ईसा पूर्व : हीरोफिलियस और इरैसिस्ट्रेटस ने सबसे पहले मानव शरीर का चीरफाड़ करके पशुओं के शरीर से तुलना की। इन्होंने सबसे पहले विस्तार से दिल और दिमाग का वर्णन किया और बताया कि दिमाग ही शीर्ष पर है। इन्होंने तंत्रिका तंत्र (नर्वस सिस्टम) की खोज भी की। मोटर और सेंसरी नर्व्स का अंतर भी बताया।
- 170 ईसा पूर्व : गैलेने नामक रोमन चिकित्सक ने सिद्धांत प्रकट किया कि दिमाग में खून समेत चार तरह के द्रव होते हैं। गैलेने ने यह भी बताया किये चार द्रव ही मानव के स्वभाव को नियंत्रित करते हैं। यादें, भावनाएँ, समझ

और संज्ञान यानी अनुभूति के भी दिमाग से ही जुड़े होने की बात उन्होंने ही सबसे पहले कही। गैलेने के विचारों का प्रभाव लगभग 12000 वर्षों तक रहा।

- 1100-1500 : लगभग 400 वर्षों तक दिमाग से जुड़े अध्ययन रुके रहे। इस दौरान चर्च ने शल्य क्रिया और चीरफाड़ पर रोक लगा दी थी।
- 1543 : न्यूरोसाइंस की सम्भवतः पहली किताब दे ह्यूमनी कॉर्पोरिस फ्रेब्रिका छपी। एंड्रियस वेसैलियस नामक चिकित्सक ने इसमें नाड़ी और दिमाग की तस्वीरों के साथ विस्तार से समझाया। साबित किया कि दिल की नाड़ियाँ तो जानवरों में भी होती हैं लेकिन उनमें भावनाएँ और तर्क नहीं होता। इसलिए दिल नहीं दिमाग ही सिरमौर है।
- 1649 : एक फ्रेंच दार्शनिक ने यह विचार प्रकट किया कि दिमाग एक मशीन की तरह काम करता है।
- 1664 : ऑक्सफोर्ड के प्रोफेसर थॉमस विलिस ने दिमाग पहले मोनोग्राफ (लेख) की रचना की। बताया कि दिमाग का 70 फीसदी हिस्सा सेरेब्रल से बना है जो भावनाओं और अन्य क्रियाकलाप को नियंत्रित करता है। चलने-बोलने को नियंत्रित करने वाले दिमाग से अलग होता है। न्यूरोलॉजी दिमाग से अलग होता है। न्यूरोलॉजी शब्द का पहली बार उपयोग किया।
- 1817 : जेम्स पार्किंसन ने हाथ-पैर कांपन से जुड़ी बीमारी को दिमाग से जुड़ा बताया। बाद में इसका नाम उनपर ही पड़ा। वैज्ञानिक आज भी इस पर शोध कर रहे हैं कि कैसे दिमाग के विचार हमारे शरीर के हलचल को नियंत्रित करते हैं।
- 1848 : फिनियास गेज नामक के एक मजदूर के सिर के अगले हिस्से में एक रॉड घुसा। इलाज के बाद वह अधिक बुद्धिमान हो गया। रेल की पटरियों के लिए एक विस्फोट के दौरान एक रॉड गेज के सिर में मस्तिष्क के सामने वाले लोब नामक हिस्से में घुस गई। काफी दिनों के बाद वह ठीक हो गया। लेकिन हादसे के पहले एक शांत स्वभाव का ठीक होने के बाद एक चिड़चिड़ा और झगडालु व्यक्ति में बदल गया। इस केस स्टडी पर काफी शोध के बाद यह

निष्कर्ष निकला कि मस्तिष्क के अगले भाग से हमारा व्यक्तित्व तय होता है। बाद में चलकर यह अलग एक विषय बना जिसे लोबोटोमी कहा जाता है। इससे अवसाद जैसी बीमारियों का इलाज ढूंढ़ने में भी मदद मिली।

- 1872 : चार्ल्स डार्विन ने मानव स्वभाव पर अपनी पुस्तक द एक्सप्रेशन ऑफ द इमोशन इन मैन एंड एनिमल में चेहरे के हावभाव पर विस्तार से बताया। सभी जानवरों में सिर्फ मनुष्य ही शर्माता है यह भी बताया।
- 1900 : सपने हमारे दिमाग में ही उत्पन्न होते हैं।

ग्राम V/s नगर

(भारत के नगरवासी ग्रामीणों से भी अधिक दुःखी)

(चाल : आत्मशक्ति....)

अनेक समस्याओं से युक्त होते हैं आधुनिक शहरी भारतीय।
तो भी ग्रामीणों को पीछड़ा मानते, स्वयं न जानते स्व पीच्छड़ापन।।
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री व यान-वाहन व स्कूल कॉलेज।
वैज्ञानिक (विभिन्न) उपकरणों से सहित भी नहीं होते हैं शान्तिसम्पन्न।।(1)

सत्ता-सम्पत्ति आदि तो भौतिकमय, इन में नहीं है सुखशान्ति।
सुखशान्ति तो चेतनामय हैं, चेतना विकास बिन न सुखशान्तिः।।
मानव केवल नहीं है भौतिकमय, सत्तादि व तन-मन-इन्द्रियाँ।
इन से परे भी हैं, चैतन्यमय, इसका गुण ही है सुखशान्ति।।(2)

सुख-शान्ति हेतु चाहिए, तन-मन-अक्ष व आत्मिक स्वास्थ्य सबल।
इसके बिना केवल भौतिक विकास से नहीं मिले हैं सुखसकल।।
भौतिकमय मुद्राराक्षस व प्रदूषणमय, रक्तबीज के कारण।
भारत के नगरवासी अधिक संत्रस्त, जिससे (वे) तन-मन-आत्मा से रुग्ण।।(3)

उन्हें न मिलता शुद्ध प्राणवायु जिससे होते आधि-व्याधि पीड़ित।
केवल वायु प्रदूषण के कारण भारत में मरते बारह लाख प्रति वर्ष।।
भोजन-पानी व दूध-फलादि भी नहीं मिलते प्राकृतिक ताजे शुद्ध।

इससे भी होते तन-मन-इन्द्रिय (आत्मा) अस्वस्थ तो कैसे शान्ति सुख।।(4)

आवासीय व यातायात समस्याओं से भी ग्रसित हैं नगरवासी।
हड़ताल व गुण्डागर्दी-चोरी-बलात्कार से संत्रस्त नगरवासी।।
भीड़ तो होती बहुत नगरों में किन्तु परिवार-समाज में नहीं सौहार्द्र।
जिससे स्व-पर में नहीं एकता सहयोग अतः एकलापन से ग्रसित।।(5)

इससे भी होते (अनेक) आधि-व्याधि से संत्रस्त जिससे न मिले सुखसकल।
जिससे तनाव-डिप्रेसन ग्रसित हो तलाक से लेकर करते आत्महत्या।।
माता-पिता व गुरु-गुणी जनों का भी नहीं करते आदर सेवा सुश्रुषा।
जिससे वे होते दुःख संतप्त संस्कार-संस्कृत-सदाचार का लोप।।(6)

नगर बन रहे है कॉंक्रिट का जंगल जिसमें रहते है यंत्राधीन मानव।
पोस्ट-पैकेज व ताम-झाम व अन्धी आधुनिकता के मानव।।
इससे परे भी जानो मानो हे! भारतीय तुम तो सच्चिदानन्द।
स्व-स्वरूप की प्राप्ति हेतु भी करो प्रयास इस हेतु 'कनक सूरी' का आशीष।।(7)

ओबरी, 05.01-2018 रात्रि 07:53

जीवनशैली से जुड़े रोगों की सुनामी बड़ी चुनौती

इस सारी प्रगति के बाद भी देश में हॉस्पिटल बेड्स की भारी कमी है। इसकी पूर्ति के लिए हमें डॉक्टरों की संख्या दो गुनी, नर्सों की तीन गुनी और पैरामेडिक्स की संख्या चौगुनी करनी होगी। चूँकि जॉब हमारी प्राथमिकता है तो हेल्थकेयर सेक्टर में बहुत संभावनाएँ हैं। 2028 तक हमारे यहाँ दुनिया का एक-तिहाई वर्कफोर्स होगा। इन उपलब्धियों पर गर्व होने के साथ हमें नॉन-कम्युनिकेबल डिसीज (एनसीडी) के रूप में जो सुनामी आने वाली हैं, उसकी भारी चिंता भी है। इन्हें हम जीवनशैली के रोगों के नाम से भी जानते हैं। यह देश में होने वाली 53 फीसदी मौतों के लिए जिम्मेदार है। वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम के मुताबिक 2030 तक 3.60 करोड़ मौतें सिर्फ एनसीडी से होंगी और सिर्फ भारत के लिए इसकी लागत 5 खरब डॉलर (32.50 लाख करोड़ रुपए से ज्यादा) होगी। यह भारत के जीडीपी का आधा होगा। चिंताजनक यह है कि एनसीडी सर्वाधिक उत्पादक आयुवर्ग को प्रभावित करती है और कई युवाओं की जिन्दगी को समय से पहले खत्म कर देती है। एनसीडी से

निपटना हमारी राष्ट्रीय प्राथमिकता होनी चाहिए। एनसीडी में पहली है डायबिटीज, जिसमें हमारे यहाँ चीन के बाद सबसे अधिक रोगी हैं और यह तेजी से बढ़ रही है। फिर आते हैं दिल के रोग। भारत में जो हृदय रोग हैं वह कॉकेशियन रोग से अलग है। यह युवाओं को चपेट में लेता है और इसके लगभग कोई लक्षण पहले दिखाई नहीं देते। तीसरे नंबर पर है लकवा। यह भी फिर से युवाओं को चपेट में लेने लगा है। कैंसर की आज वही स्थिति है जो कभी दिल के रोगों की थी। अधिकतर रोगी तीसरे और चौथे चरण में अस्पताल पहुँचते हैं और उन्हें बचाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

किसने समझा अर्थ?

अकेले होने का अर्थ अपने परिवेश से छिपना या बचना कतई नहीं है, बल्कि इसी अकेलेपन में अपने मन और दुनिया की दौड़ का अवलोकन और फिर जीवन का सृजन संभव है। आपका अकेला होना जितना मौलिक और रचनात्मक होता है, उतना ही आप लोगों के बीच भी अछूते या अबाधित हो जाते हैं।

दुख दोनों ने खोजा

चालू जिन्दगी हो या बौद्धिक जिन्दगी, दोनों अंत तक जीवन को चुकते रहते हैं-एक अकेलेपन से घबराकर समूहवादिता से, दूसरा अकेलेपन को रोग बनाकर। तन और मन की सजग देखभाल के साथ अन्तिम सांस तक मस्त मौज में रहने के सरल नुस्खे सदा से मौजूद है।

हर व्यक्ति अकेला है

जो जितना उथला जीवन चाहता है, उसे उतने ही रिश्ते-नाते चाहिए। मगर जो जितना गहरा जीवन बनाता चला जाता है, उसे उतने ही कम नाते चाहिए, बल्कि वह अपनी भी निरंतर काट-छांट करता रहता है, ताकि जब जाने की घड़ी आए तो न केवल वह दूसरों से, बल्कि स्वयं से भी मुक्त होने में आनंद महसूस करें।

66 प्रतिशत शहरों में आ बसे लोग महसूस करते हैं अकेलापन
77 प्रतिशत लोग चाहते हैं कोई दोस्त जो बाँट ले अकेलेपन का दर्द
63 प्रशित लोग खुद को काम में झोके रखना चाहते हैं
57 प्रतिशत व्यक्ति भावानात्मक सम्पर्क से दूर हो रहे हैं
64 प्रतिशत तक बढ़ सकता है डिमेशिया का खतरा

भारतीय युवा V/s दुनिया के युवा

विदेशों की तुलना में हम जल्दी पढ़ाई शुरू करते हैं, शादी भी जल्दी, लेकिन एक्टिव कम रहते हैं

हमें नाम रखने की आजादी

जन्म के बाद बच्चे और उसके माता-पिता को पहला अधिकार पसन्द के नाम चुनने का मिलता है। यह आजादी पूरी दुनिया में नहीं है।

– फ्रांस में बर्थ सर्टिफिकेट रजिस्ट्रार स्थानीय कोर्ट को सूचित कर सकता है यदि उसे लगा कि नाम उपयुक्त नहीं है। जर्मनी में नाम रखने को लेकर कई तरह के प्रतिबंध हैं। डेनमार्क में 7000 नामों की लिस्ट है, उसमें से नाम चुनना होता है। सऊदी अरब में भी 50 से ज्यादा नाम रखने पर प्रतिबन्ध है।

हम जल्दी पढ़ाई शुरू करते हैं

जन्म के बाद हमारी पढ़ाई शुरू होती है। भारत में बच्चे करीब साढ़े तीन साल से केजी में पढ़ाई करता है। प्री-स्कूल या नर्सरी की पढ़ाई तो ढाई साल में ही शुरू हो जाती है।

– यूरोप में सबसे अच्छी पढ़ाई फिनलैंड की है। यहाँ बच्चा सात साल की उम्र में स्कूल जाना शुरू करता है। इंग्लैण्ड, स्कॉटलैण्ड और वेल्स में पाँच साल की उम्र में बच्चे अपनी पढ़ाई शुरू करते हैं। स्पेन, जर्मनी और फ्रांस जैसे देशों में पढ़ाई की यह उम्र 6 साल तक है।

अमेरिकी युवाओं से पहले शादी

भारत में शादी की औसत उम्र 22.8 साल है। हमारे देश में लड़के की नौकरी लगते ही उसके माता-पिता शादी की बात करने लगते हैं।

– विदेशों में देर से शादी का चलन है। जर्मनी में कॅरियर के काफी बाद में शादी की बात होती है। वहाँ शादी की औसत उम्र 33.1 साल है। चीन में यह उम्र 25.3 साल है। अमेरिका में शादी की औसत उम्र 27.9 साल और

जापान में 30.5 साल है। हालांकि इंडोनेशिया में यह उम्र 21.9 वर्ष है।

ब्राजील में वोटिंग का हक जल्दी

पहले हमें 21 की उम्र में वोटिंग का अधिकार मिलता था, लेकिन 1988 में इसे 18 साल कर दिया गया। जो परफेक्ट समय माना जाता है।

- अर्जेंटीना, ऑस्ट्रिया और ब्राजील जैसे देशों में 16 वर्ष की उम्र में ही चुनाव में मतदान करने के अधिकार मिल जाते हैं। इंडोनेशिया, दक्षिण कोरिया जैसे देशों में यह अधिकार 17 की उम्र में मिलता है। जबकि दक्षिण कोरिया में यह उम्र 19 वर्ष, ताइवान में 20 वर्ष और मलेशिया, सिंगापुर, सऊदी अरब आदि में 21 वर्ष है।

परिवार के साथ रहते हैं

भारत में 15 से 34 साल के करीब 69 फीसदी युवा अपने परिवार के साथ रहते हैं। इसके अलावा 4 फीसदी युवा हॉस्टल आदि में रहते हैं, जो माता-पिता पर ही निर्भर होते हैं।

- अमेरिका जैसे देशों में अधिकांश माता-पिता 18 साल या इससे भी पहले अपने बच्चों को खुद से अलग कर देते हैं। ताकि वे आत्मनिर्भर बनें। वे 60 की उम्र से पहले लोन्ग टर्म केयर इंश्योरेन्स पॉलिसी आदि ले लेते हैं और बुढ़ापे में भी बड़ी संख्या में लोग अकेले ही रहते हैं।

लेकिन कम एक्टिव रहते हैं हम

हम एक्टिव कम रहते हैं। रोजाना औसतन हम 4297 कदम चलते हैं। 39.2 करोड़ लोग देश में इनएक्टिव रहते हैं। 50 फीसदी बच्चे देश में गाड़ियों से स्कूल जाते हैं।

- चीन के लोग हमसे ज्यादा एक्टिव रहते हैं। वे 6189 कदम रोज चलते हैं। जापान में यह आँकड़ा 6010 है। अमेरिकी 4774 स्टेप रोज चलते हैं। हालांकि यदि आप रोज 7 हजार से 10 हजार स्टेप चलते हैं तब ही पूर्णरूप से सक्रिय माने जाएंगे। ऐसा दुनिया में कम लोग ही कर रहे हैं।

हमारे लिए मिलिट्री ट्रेनिंग जरूरी नहीं, कई देशों में महिलाओं के लिए भी जरूरी

भारत में इस विषय पर कई बार चर्चा जरूर हुई लेकिन अभी भी देश में युवाओं के लिए मिलिट्री ट्रेनिंग लेना या सेना में अपनी सेवाएँ देना जरूरी नहीं किया गया है। हमारी सेना पूरी तरह प्रोफेशनल है।

- इजरायल और नॉर्वे में युवक-युवती दोनों के लिए मिलिट्री सर्विस जरूरी है। करीब 60 से ज्यादा देशों में अनिवार्य सैन्य भर्ती है। 2011 में जर्मनी में अनिवार्य सेवा खत्म की गई। रूस में पुरुषों के लिए एक साल की सैन्य सेवा जरूरी है। अमेरिका-ब्रिटेन ने अनिवार्य भर्ती समाप्त कर दी है।

मिट्टी की आत्मकथा व आत्मव्यथा

(चाल : पूछ मेरा क्या नाम रे...।)

मिट्टी मेरा नाम है, मेरा न गुण न्यून है।
मेरे बिना न जीवित रहेंगे, तिर्यञ्च से ले मानव है।
मेरे आधार में जीवित होते, वृक्ष-लता-गुल्म-शस्य है।
जिसे खाकर जीवित रहते, पशु-पक्षी से ले मानव है।।(1)

मुझे भी बनती ईंट से घर, जिसमें रहते हैं मानव।
मैं भी समाहित करती हूँ जल, (जिससे) कुँआदि से मानव पाता जल।।
मेरे कण से ही धूली बनती, जिससे भी बनता बादल।
बादल से जल-वर्षा के कारण, प्राप्त होता है मीठा जल।।(2)

मेरे ऊपर मानव घर बनाते, मन्दिर-मस्जिद-गिरजाघर।
स्कूल-कॉलेज-विश्वविद्यालय, फैक्ट्री-रेलपटरी, खान सड़क तक।।
इन सब दृष्टि से मेरा मूल्य, सोना-चाँदी रूपयों से न कम।
''जननी व जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि, गरियसी'' रूप से महिमावान्।।(3)

तथापि मानव मुझे तुच्छ मानते, कहते 'हो गया मिट्टी पलीत।'
'मिट्टी में मिला दिया' मिट्टी (के) मोल बेचा' आदि से करते मूल्यहीन।
विभिन्न गन्दगी अपशिष्ट से, मुझे कर रहे प्रदूषित भारी।
जिससे मैं हो रही रुग्ण-दुर्बल, जिससे होती धरती रोगी।।(4)

जिससे पशु-पक्षी, वन-उपवन, वृक्ष से ले शस्य भी रोगी।
वायु-जल भी हो रहे प्रदूषित, जिससे मानव भी हो रहे रोगी।।
यथा गर्भवती माता रुग्ण होने से, गर्भस्थ शिशु भी होता रुग्ण।
तथाहि माता सम मृदा के रोग से, धरती के सभी प्राणी होते रुग्ण।।(5)
इन सबके अपराधी हैं मानव, तथापि मान रहे स्वयं को महान्।
मानव ही प्रकृति को विकृत करे, जिससे अन्य प्राणी को भी मिले दण्ड।।
मानव बिना भी प्रकृति रहेगी, प्रकृति बिना न मानव संभव।
अतः प्रकृति के संरक्षण हेतु, ''सूरी कनक'' ने बनाया काव्य।।(6)

ओबरी, 10:01.2018 प्रातः 7:16

1. पृथ्वीकायिक जीवों की प्रज्ञापना-

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के है-(1) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक (2) बादर पृथ्वीकायिक।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक दो प्रकार है-(1) पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक (2) अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक।

बादर पृथ्वीकायिक दो प्रकार के होते है-(1) श्लक्ष्ण (चिकने) बादर पृथ्वीकायिक (2) खरबादर पृथ्वीकायिक।

श्लक्ष्ण (मृदु) बादर पृथ्वीकायिक सात प्रकार हैं-

(1) कृष्ण मृत्तिका (2) नील मृत्तिका (3) लोहित मृत्तिका (लाल रंग की मिट्टी) (4) हरिद्र मृत्तिका (पीली मिट्टी) (5) शुक्ल मृत्तिका (6) पाण्डु मृत्तिका (मटमैले रंग की मिट्टी) (7) पनक मृत्तिका (कोई से हरे रंग की मिट्टी)

खर बादर पृथ्वीकायिक के भेद-(1) पृथ्वी (2) शर्करा (3) बालुका (4) उपल (पाषाण) (5) शिला (6) लवण (7) ऊष (ऊषर-क्षार वाली बंजर जमीन) (8) अयस् (लोहा) (9) ताँबा (10) अपुष् (रांगा) (11) सीसा (12) रौप्य (चाँदी) (13) सुवर्ण (सोना) (14) वज्र (हीरा) (15) हरताल (16) हिंगुल (17) मैनसिल (18) सासग (पारद-पारा) (19) अंजन (सौवीर आदि) (20) प्रवाल (मूँगा) (21) अभ्रपटल (अभ्रक) (22) अभ्रबालुका (अभ्रक

मिश्रित बालू) बादर काय में मणियों के प्रकार-(23) गोमेजक (गोमेदरत्न) (24) अचकरत्न (25) अंकरत्न (26) स्फटिकरत्न (27) लोहित्ताक्षरत्न (28) मरकतरत्न (29) मसारगल्लरत्न (30) भुजमोचकरत्न (31) इंद्रनीलमणि (32) चंदनरत्न (33) गैरिकरत्न (34) हंसरत्न (हंसगर्भरत्न) (35) पुलकरत्न (36) सौगंधिकरत्न (37) चंद्रप्रभारत्न (38) वैडूर्यरत्न (39) जलकांतमणि (40) सूर्यकांतमणि।

इनके अतिरिक्त जो अन्य भी तथा प्रकार के (वैसे) (पद्मरागमणि आदि मणिभेद हैं, वे भी खर बादर पृथ्वीकायिक समझने चाहिए।)

बादर पृथ्वीकायिक के दो भेद-(1) पर्याप्तक (2) अपर्याप्तक इनमें जो अपर्याप्तक हैं, वे (स्वयोग्य पर्याप्तियों को) असम्प्राप्त होते हैं।

उनमें से जो पर्याप्तक हैं उनके वर्णादेश (वर्ण की अपेक्षा) से, गंध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों भेद (विधान) हैं। (उनके) संख्यात लाख योनि प्रमुख (योनि द्वार) हैं। पर्याप्तकों के आश्रय में अपर्याप्तक (आकार) उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक (पर्याप्तक) होता है वहाँ उनके आश्रय से नियम से असंख्यात अपर्याप्तक (उत्पन्न होते हैं) यह हुआ वह (पूर्वोक्त) खरबादर पृथ्वीकायिकों का निरूपण।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक की व्याख्या-

जिन जीवों को सूक्ष्म नामकर्म का उदय हो वे सूक्ष्म कहलाते हैं। ऐसे पृथ्वीकायिक जीव सूक्ष्म पृथ्वीकायिक है। जिनकी बादर नामकर्म का उदय हो उन्हें बादर कहते हैं। ऐसे पृथ्वीकायिक बादर पृथ्वीकायिक कहलाते हैं। बेर और आँवले में जैसे सापेक्ष सूक्ष्मता और बादरता है वैसी सूक्ष्मता और बादरता यहाँ नहीं समझनी चाहिए। यहाँ तो (नाम कर्मोदय के निम्मित से ही सूक्ष्म और बादर समझना चाहिए)।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समग्र लोक में ऐसे ठसाठस भरे हुए हैं, जैसे किसी पेटी में सुगन्धित पदार्थ डाल देने पर उसकी महक उसमें सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। बादर पृथ्वीकायिक नियत-नियत स्थानों पर लोकाकाश में होते हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के पर्याप्त अपर्याप्तक की व्याख्या-जिन जीवों की पर्याप्तियाँ पूर्ण हो चुकी हो वे पर्याप्तक कहलाते हैं। जो जीव अपने योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण न कर चुके हों वे अपर्याप्तक कहलाते हैं। पर्याप्तक और अपर्याप्तक के दो-दो

भेद होते हैं-(1) लब्धि पर्याप्तक (2) करण पर्याप्तक तथा (1) लब्धि अपर्याप्तक (2) करण अपर्याप्तक

जो जीव अपर्याप्तक रहकर ही मर जाते हैं, वे लब्धि अपर्याप्तक और जिनकी पर्याप्तियाँ अभी पूरी नहीं हुई हो, किन्तु पूरी होगी वे कारण अपर्याप्तक कहलाते हैं।

पर्याप्ति - पर्याप्ति आत्मा की एक विशिष्ट शक्ति की परिपूर्णता है। जिसके द्वारा आत्मा आहार, शरीर आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है और उन्हें आहार शरीर आदि के रूप में परिणत करता है, वह पर्याप्ति अपशक्ति पुद्गलों के उपचय से उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि उत्पत्ति देश में आये हुए नवीन आत्मा ने पहले जिन पुद्गलों को ग्रहण किया, उनको तथा प्रतिसमय ग्रहण किये जा रहे अन्य पुद्गलों को, एवं उनके संपर्क से जो तद्अप परिणत हो गये है, उनको आहार, शरीर, इन्द्रियाँ आदि के रूप में जिस शक्ति के द्वारा परिणत किया जाता है, उस शक्ति की पूर्णता पर्याप्ति कहलाती है।

पर्याप्ति 6 हैं-(1) आहार पर्याप्ति (2) शरीर पर्याप्ति (3) इंद्रिय पर्याप्ति (4) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति (5) भाषा पर्याप्ति (6) मन पर्याप्ति।

जिस शक्ति द्वारा जीव बाह्य आहार (आहार योग्य पुद्गलों) को लेकर खल और रस के रूप में परिणत करता है, वह आहार पर्याप्ति है। जिस शक्ति के द्वारा वशीभूत (रसयुक्त परिणत) आहार (आहार योग्य पुद्गलों) को रस, रक्त, माँस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र इन सात धातुओं के रूप में परिणत किया जाता है, वह शरीर पर्याप्ति है। जिस शक्ति के द्वारा धातुरूप में परिणमित आहार पुद्गलों को इंद्रिय रूप में परिणत किया जाता है वह इंद्रिय पर्याप्ति है। पाँचों इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके अनाभोगनिर्वर्तित (अनजाने ही निष्पन्न) वीर्य के द्वारा इन्द्रिय रूप में परिणत करने वाली शक्ति इन्द्रिय पर्याप्ति है।) जिस शक्ति के द्वारा (श्वास तथा उच्छ्वास के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके, उन्हें (श्वास एवं) उच्छ्वास रूप परिणत करके और फिर उनका आलंबन लेकर छोड़ा जाता है, वह श्वास उच्छवास पर्याप्ति है। जिस शक्ति से भाषा योग्य (भाषा वर्गणा के) पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें भाषारूप में परिणत करके वचन योग्य का आलंबन लेकर छोड़ा जाता है, वह भाषा पर्याप्ति है।

जिस शक्ति के द्वारा मन के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके मन के रूप में परिणत करके मनोयोग का आलंबन लेकर छोड़ा जाता है वह मनः पर्याप्ति है। इन छहों पर्याप्तियों में से एकेन्द्रिय में चार, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चतुःइन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय में 5 और संज्ञी पंचेन्द्रिय में छहों पर्याप्तियाँ होती हैं।

जीव अपनी उत्पत्ति (जन्म) के प्रथम समय में ही, अपने योग्य संभावित पर्याप्तियों को एक साथ निष्पन्न करना प्रारंभ कर देता है। किन्तु वे पर्याप्तियाँ क्रमशः पूर्ण होती हैं। जैसे-सर्वप्रथम आहार पर्याप्ति, तत्पश्चात् शरीर पर्याप्ति, फिर इन्द्रिय पर्याप्ति, फिर श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति इसके बाद भाषा पर्याप्ति, अंत में मनः पर्याप्ति पूर्ण होती है। आहार पर्याप्ति प्रथम समय में ही निष्पन्न हो जाती है, शेष पर्याप्तियों के पूर्ण होने में प्रत्येक का अंतर्मुहूर्त समय लग जाता है। किन्तु समस्त पर्याप्तियों के पूर्ण होने में भी अंतर्मुहूर्त काल ही लगता है क्योंकि अंतर्मुहूर्त के अनेक विकल्प है।

मृदु बादर पृथ्वीकायिक - पिसे हुए आटे के समान मृदु पृथ्वी श्लक्षण (मृदु) कहलाती है। श्लक्ष्ण पृथिव्यात्मक जीव भी उपचार से श्लक्ष्ण कहलाते हैं। जिन बादर पृथ्वी के जीवों का शरीर मृदु हैं वे, श्लक्षण बादर पृथ्वीकायिक हैं। ये सात प्रकार के होते हैं।

खर बादर पृथ्वीकायिकों की व्याख्या (अपर्याप्तकों का स्वरूप)-खर बादर पृथ्वीकायिकों के पर्याप्तक अपर्याप्तक के दो भेद हैं, उनमें से अपर्याप्तक अपनी पर्याप्तियों को पूर्णतया असंप्राप्त है अथवा उन्हें विशिष्ट वर्ण आदि प्राप्त नहीं हुए हैं। इस दृष्टि से उनके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि कृष्ण आदि वर्ण वाले है। शरीरादि पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाने पर ही बादर जीवों में वर्ण आदि विभाग प्रकट होता है, अपूर्ण होने की स्थिति में नहीं। तथा वे अपर्याप्तक उच्छ्वास पर्याप्ति से अपर्याप्त रहकर ही मर जाते हैं। इसी कारण उनमें स्पष्टतर वर्णादि का विभाग संभव नहीं है। इस दृष्टि से उन्हें असम्प्राप्त कहा है।

पर्याप्तकों के वर्णादि के भेद से हजारों भेद-इनमें से जो पर्याप्तक हैं, जिनकी अपने योग्य चार पर्याप्तियाँ पूर्ण हो चुकी हैं, उनमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के भेद से हजारों भेद होते हैं। जैसे-वर्ण के 5, गंध के 2, रस के 5, स्पर्श के 8 भेद होते हैं। फिर भी प्रत्येक वर्ण, गंध, रस, स्पर्श में अनेक प्रकार की तरतमता होती है। जैसे-

भ्रमर, कोयल और कज्जल आदि में कालेपन की न्यूनाधिकता होती है अतः कृष्ण, कृष्णतर, कृष्णतम आदि अनेक कृष्णवर्णीय भेद हो गये। इसी प्रकार नीलादि वर्ण के विषय में समझना चाहिए। गंध, रस, स्पर्श से संबंधित अनेक भेद होते हैं। इसी प्रकार वर्णों के परस्पर मिश्रण से धूसर वर्ण, कर्बुर (चितकबरा) वर्ण आदि अगणित वर्ण निष्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार एक गंध में दूसरी गंध मिलने से, एक रस में दूसरा रस मिश्रण करने से, एक स्पर्श के साथ दूसरे स्पर्श के संयोग से हजारों भेद गंध, रस, स्पर्श की अपेक्षा हो जाते हैं।

पृथ्वीकायिकों की लाखों योनियाँ-पृथ्वीकायिक जीवों की लाखों योनियाँ हैं। अर्थात् संख्यात लाख योनिद्वार हैं। जेसे-एक वर्ण, गंध, रस, स्पर्श में पृथ्वीकायिकों की संवृत्त योनि होती है। वह तीन प्रकार की है-(1) सचित्त (2) अचित्त (3) मिश्र। इनके प्रतयेक के तीन-तीन भेद होते है-(1) शीत (2) उष्ण (3) शीतोष्ण।

इन शीत आदि प्रत्येक के भी तारतम्य के कारण अनेक भेद हो जाते हैं। यद्यपि इस प्रकार से स्वस्थान में विशिष्ट वर्णादि से युक्त योनियाँ व्यक्ति के भेद से संख्यातीत हो जाती हैं। तथापि वे सब जाति सामान्य की अपेक्षा एक ही योनि में परिगणित होती हैं। इस दृष्टि से पृथ्वीकायिक जीवों की संख्यात लाख योनियाँ होती हैं। और वे सूक्ष्म, बादर सबकी सब मिलाकर सात लाख योनियाँ समझनी चाहिए।

मिट्टी का तवा बनाए रखता है पोषक तत्त्व

एक शोध के अनुसार मिट्टी के तवे में रोटी बनाने से उसके पोषक तत्त्व नष्ट नहीं होते, जबकि एल्यूमीनियम के बर्तन में बने खाने में 87 प्रतिशत पोषक तत्त्व खत्म हो जाते हैं। पीतल के बर्तन में खाना बनाने से इसमें से 7 प्रतिशत पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, साथ ही कांसे के बर्तन में बने खाने में से 3 प्रतिशत पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। मिट्टी के बर्तन में बने खाने में 100 प्रतिशत पोषक तत्त्व होते हैं।

भारतीय सड़क की आत्मकथा व आत्मव्यथा

(भारतीय सड़क की दुर्दशा से भारतीयों की दुर्दशा)

(चाल : सुनो सुनो हे! दुनिया... आत्मशक्ति......।)

सुनो! सुनो! हे! भारतवासी मेरी दुःखद आत्म-कहानी
मेरी दुर्दशा तेरे कारण तेरी दुर्दशा भी मुझे से जुड़ी।।
जो बोओगे वह ही पाओगे, यह सार्वभौम सिद्धान्त।
तेरे कारण मैं हूँ संत्रस्त, मेरे कारण तुम भी संत्रस्त।।(1)

चैन रियक्सन से ये होते हैं, ये कार्यकारण सम्बन्ध।
किन्तु इसमें तुम ही हो दोषी, मैं हूँ निस्पक्ष-निरीह-उदासीन।।
मेरे निर्माण से (ले) सुरक्षा तक तथाहि मुझसे जो लेते हो काम,
सभी में तू हो भ्रष्ट, अनैतिक, अनुशासन-विहीन विवेक हीन।।(2)

टू व्हिलर से बहु व्हिलर हेतु, तुम बनाते हो मेरा शरीर।
किन्तु पैदल चलने साईकिल वाले, हेतु नहीं बनाते हो मेरा शरीर,
जो चलते हैं यान-वाहनों से, उनकी दृष्टि से चलने वाले तुच्छ।
ऐसे तुच्छ प्राणी हेतु नहीं है, तेरे मन में प्राणी रक्षा के भाव।।(3)

मद्य पीकर या मदमस्त होकर, चलाते हो गाड़ी को अनियंत्रित।
जिससे मनुष्य व पशु-पक्षियों को कुचलकर लेते हो प्राण।
प्रायः पाँच लाख होती सड़क दुर्घटना (प्रायः) डेढ़ लाख की होती मृत्यु।
प्रायः छः लाख होते घायल, जो पृथ्वीभर में सर्वाधिक।।(4)

हड़तालों में मेरा दुरुपयोग करते हो तुम सर्वाधिक।
रोड़जाम करना-यातायात रोकना, तथाहि करते हो तोड़-फोड़।।
मेरे ऊपर गन्दगी करो मेरे दोनों पार्श्व में भी मद्य दुकान।
माँस खाना-मद्य पीना-चोरी-बलात्कार से ले करो प्रदूषण।।(5)

मेरा शरीर रहता है हर समय, जीर्ण-शीर्ण व रुग्ण-दुर्बल।
तथापि मेरा भी उपचार नहीं करो, जिससे तेरा होता अपकार।
अनावश्यक मेरा शरीर बनाओ उपजाऊ भूमि को करके बर्बाद।

वृक्ष-नदी-तालाब-बावड़ी-मन्दिर-मूर्ति-घरों को करके बर्बाद।।(6)
आवश्यक हो बनाना विधेय अनावश्यक भी बनाते हो। मूर्ख (भ्रष्ट)
इनमें भी अनेक-विध भ्रष्टाचार द्वारा करते क्षति राष्ट्रीय सम्पत्ति।
सड़क (मुझे) तो बनाते हो संस्कार नहीं जिससे मेरी-तेरी दुर्दशा।
संस्कार व राष्ट्रीय चारित्र निर्माण करो, इस हेतु सूरी 'कनक' का आशीष।।(7)

ओबरी, 06.01.2018, मध्याहन - 1:36

आखिर कब सुरक्षित बनेंगी देश की सड़कें?

देश में सड़क दुर्घटनाओं से आए दिन होने वाली मौतों का समाचार एक क्षण के लिए हम सभी को झकझोर कर रोंगटे खड़े कर देता है। विडम्बना है कि सड़क यातायात नियंत्रण के बुनियादी ढ़ाँचे व समुचित निगरानी तंत्र की खामी से दम तोड़ती यातायात व्यवस्था को सुधारने की बजाए सरकार मुस्तैदी दिखाने के लिए बड़े हादसों में जाँच कमेटी बैठाकर व परिजनों को मुआवजा देकर जिम्मेदारी पूरी मान लेती है। 6 सितम्बर, 2017 को केन्द्रीय सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्री द्वारा जारी अर्द्धवार्षिक 'रोड़ एक्सीडेन्ट रिपोर्ट 2017' के अनुसार वर्ष 2016 में देश में 4,80,652 सड़क हादसों में 1,50,785 लोगों की मौत हुई और 4,94,624 लोग घायल हुए। सबसे ज्यादा 84 फीसदी सड़क हादसे ड्राइवरों की गलती से हुए जिनमें मरने वालों का प्रतिशत 80.3 व घायलों का 83.9 रहा है, जो काफी चिन्ताजनक है। यह सच है कि अधिकांश सड़क हादसे वाहन चालकों के नशे की हालत में, कम सोने, फर्जी लाईसेंस वाले लोगों द्वारा ड्राईविंग, गन्तव्य स्थल पर पहुँचने की जल्दी में निर्धारित सीमा से अधिक गति में लापरवाही से वाहन चलाने से होते हैं। सड़क हादसों में कमी लाने के लिए संसद की स्थायी समिति ने राज्यसभा में विचाराधीन मोटर वाहन संशोधन अधिनियम 2016 में संशोधन के लिए 22 दिसम्बर, 2017 को अपनी रिपोर्ट पेश की है। रिपोर्ट में सड़क हादसों में लापरवाही से मौत होने से सम्बन्धित आई.पी.सी. की धारा 304ए में संशोधन कर अंग्रेजों के समय निर्धारित दो वर्ष तक की जेल या जुर्माने की सजा के स्थान पर इसे गैरजमानती बनाने व 7 वर्ष तक की सजा, 500 किमी. से ज्यादा दूरी तय करने वाले ट्रकों में दो ड्राइवर रखने, पुलिस व यातायात विभाग के अधिकारियों को जाँच के समय मौके की ऑडियो-वीडियो

रिकॉर्डिग के लिए बॉडी वॉन कैमरा साथ रखने व वाहनों के पंजीकरण के समय ही थर्ड पार्टी इन्श्योरेन्स अनिवार्य करने सम्बन्धी कई सिफारिशें शामिल हैं। वर्तमान में आधे से ज्यादा वाहन, जिनमें दोपहिया वाहन सर्वाधिक हैं, बिना थर्ड पार्टी इन्श्योरेन्स के चल रहे हैं। वर्ष 2016 की रिपोर्ट के अनुसार सड़क हादसों में दोपहिया वाहन चालकों के मरने का 34.4 प्रतिशत सर्वाधिक रहा है, जो कुल सड़क दुर्घटनाओं का 33.8 प्रतिशत है। अफसोस की बात है कि हमारे देश में सड़क हादसों की स्थिति इंडोनेशिया, पाकिस्तान, नाइजीरिया जैसे देशों से भी बदतर है। ऐसे में देश में वाहन चालकों को ट्रैफिक नियमों की लगातार जानकारी व इन्हें ट्रैफिक पुलिस के विशेषज्ञों द्वारा शिक्षित करने की व्यवस्था करना भी जरूरी है।

हंस की आत्मकथा-आत्मव्यथा व सन्देश

(चाल : आत्मशक्ति....2. तुम दिल की धड़कन.....।)

मैं हूँ हंस पक्षिओं में श्रेष्ठ, नाम-गुण व काम में।
मेरा प्रयोग (अनेक) रूपक-अलंकार में होता भाषा से ले धर्म में।।
नारायण को भी हंस कहते हैं, सूर्य व अश्व मुझे भी।
मेरे अनेक पर्यायवाची शब्द होते है, मराल, चक्रांग, आत्मा भी।।(1)

कलहंस व मानसौक शब्द से मेरा अभिहित होता भी।
क्षीर-नीर को अलग करने की, क्षमता से ''विवक हंस'' रूप भी।।
मेरा वर्णन विभिन्न प्रकरणों व शास्त्रों में उल्लेख होता भी।
'हंस वाहिनी सरस्वती विद्यादेवी' से मेरा सम्बन्ध होता भी।।(2)

चित्र व मूर्ति में मेरा प्रयोग इसलिए मानव करते हैं।
हंसवाहिनी सरस्वती से हंसगामिनी रूप में उपमा देते हैं।।
मेरा प्रमुख निवास है 'मान सरोवर' के स्वच्छ जल में।
मुझे न अस्वच्छता भाता है पर्यावरणीय दृष्टि से।। (3)

पंचतंत्र से ले इसप की कहानी में मेरा बहुत वर्णन है।
मुझ से शिक्षा पाने के लिए लेखकों ने किया वर्णन है।।
हंस-बगुला देखन में एक समान भानसरोवर माँ ही।

हंस तो मोति को खाता है किन्तु बगुला सींप को खाये।। (4)
योग्य शिष्यों के उदाहरणों में 'हंसवत् शिष्य' योग्य होता।
बगुला, सर्प, जौंक, मच्छर सम शिष्य अयोग्य शिष्य होता।।
इत्यादि अनेक गुणों से युक्त मेरा वर्णन होता है।
तो भी अधिकतर मानव मेरे गुणों को ग्रहण न करते हैं।। (5)
इसलिए तो तथाकथित सभ्य मानव होते बगुला सम सफेद।
मेरे स्वच्छ गुणों को ग्रहण न करते वे होते बगुला भगत।।
ऐसे(मा)नवों के कारण जो फैल रहे हैं विभिन्न प्रदूषण।
उससे मैं भी प्रभावित हूँ मान सरोवर हो रहा दूषण।। (6)
अतएव मानव स्व-विवेक हंस जगाओ स्वयं जीओ और जीने दो।
मेरी आत्मकथा के माध्यम से 'कनक सूरी' का संदेश गहो।। (7)

ओबरी, 04.01.2017 रात्रि 07:51

नदी की आत्मकथा व आत्मव्यथा

(चाल : छोटू मेरा नाम रे.....।)

नदी मेरा नाम है, मुझे में बहता पय है।
मनुष्य से ले पशु-पक्षी वनस्पति तक पाते लाभ है।।
मेरे अनेक नाम होते हैं, यथानाम तथा गुण हैं।
सरिता, वाहिनी, नाव्या, स्रोतास्विनी, तरंगिणी, नद हैं।।1।।
द्विरेफ, सरित, (व) तटिनी, आपगा, शैलजा, धुनी, सिन्धु हैं।
शैवालिनी व सिन्धुगामिनी, निम्नगा, स्रवन्ती नाम हैं।।
मेरा जन्म प्रायः पर्वत से होता, अतः शैलजा (शैवालिनी) नाम हैं।
मेरा पय सदा बहता रहता, अतः स्रवन्ती/(स्रोतास्विनी) आदि नाम हैं।।2।।
निम्न में मेरा स्रोत बहता, अतः निम्नगा नाम हैं।
सिन्धु में प्रायः प्रवेश होने से सिन्धुगामिनी नाम हैं।।
मेरे तट पर हुई (पहले) सभ्यता-प्रारम्भ, मेरे पथ को पाकर।
कृषि से हुई सभ्यता प्रारंभ, मेरे सहायता पाकर।।3।।

मेरे स्रोत में नौका द्वारा, यातायात भी हुआ प्रारंभ।
इससे व्यापार व देश-विदेश, गमन हुआ अधिक सुगम।।
मुझ से हुई भूमि उर्वरा जिससे धरती सश्य-शामला।
पत्थर को भी मैं चूर्ण बनाया (रेत), जिससे बने मन्दिर-धर्मशाला।।4।।
मुझ में मानव व पशु-पक्षी करते, स्नान व पीते पय।
मेरे दृश्य व मेरी ध्वनि से, मोहित हो कवि रचते काव्य।।
और भी अनेक उपकार करती हूँ, किन्तु कृतघ्न मानव करे अपकार।।
मेरे स्रोत में गन्दगी-गटर डालकर, मेरा जल को करे जहर।।5।।
जिससे स्वयं तो हो रहा रोगी तथाहि रोगी होते अन्य जीव।
अमृत सम मेरे जल को, मानव कर रहा हलाहल।।
समुद्र में भी करोड़ों टनमल मिलने से समुद्र भी हो रहा दूषित।
समुद्र में निवास करने वाले भी, रोगी होकर मर रहे अकाल।।6।।
यदि न डालेंगे मल में मुझ में, मैं रहूँगी सदा ही निर्मल।
व्यर्थ मेरी स्वच्छता हेतु नहीं करनी होगी योजनायें।।
किन्तु स्वार्थी मोही अज्ञानी मानव छोटा सा सत्य नहीं मानता।
तो भी स्वयं को सभ्य-श्रेष्ठ मानकर करता प्रकृति शोषण।।7।।
जब तक मानव मुझ से शिक्षा लेकर, नहीं बनता परोपकारी।
उसके सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान आदि नहीं बनेंगे स्व-पर उपकारी।।
मेरे गुणगण वर्णन द्वारा 'सूरी कनक' दे रहे ज्ञानदान।
मानव गुणी ज्ञानी-परोपकारी बनकर मेरे सम बने गुणवान।।8।।

ओबरी 02.01.2017 प्रातः 07:59

कमल की आत्मकथा व मानव हेतु शिक्षा

(चाल : आत्मशक्ति.......।)

मैं हूँ कमल गुणों से भरपुर, नाम-गुण-अभिराम से।
कोमल-सुन्दर/(सुरभित) होने पर भी तीक्ष्ण सूर्य रश्मि से करुँ विकास है।।

इन कारणों से मेरे नाम भी प्रचुर कमल, सरोज, जलज, इंदीवर।
उत्पल, पंकज, नीरज, अंबुज, तामरस, सारंग, पुंडरीक।।1।।

शतपत्र, शतदल, कोकनद , राजीव, अरविन्द, पद्म, कंज है।
अब्ज, सरसीरुह, वारिज, कुवलय, महोत्पल, खरदण्ड है।।
पुष्कर, नलिन आदि मेरे नाम पावन-मनोहर काम है।
पंक से उत्पन्न होने से पंकज, तो भी पंक से निर्लिप्तगुण है।।2।।

ऐसा ही कमल, नीरज-अंबुज, वारिज आदि (अभिधेय) ज्ञेय है।
मेरे नाम से भारत के लोग नामकरण करते अधिक है।।
पूजा-आराधना-उत्सव आदि में मेरा महत्त्व होता अधिक।
शिल्प-चित्र व काव्यकला में, मेरा प्रभुत्व भी अत्यधिक है।।3।।

महान् गुण व महापुरुषों की उपमा में, मेरा प्रयोग होता है।
निर्लिप्तगुण व पद्मप्रभ भगवान्, पदकमल आदि में होता है।।
पद्मासन पद्मसंख्या, पद्मालय व नयन कमल से अभिहित करते।
मेरा दर्शन भी स्वप्न-शकुन आदि में मंगलमय मानते हैं।।4।।

मेरा मकरन्द मधुप पीते, मेरे बीज को खाते मानव भी।
मेरा पत्ते में भोजन करते, मेरे से बनती सुन्दर माला भी।।
मेरे गुणगण तो मानव गाते, किन्तु न मेरे गुण अपनाते।
मैं तो पंक से भी निर्लिप्त रहता, मानव प्रदूषण करते हैं।5।।

मैं एकेन्द्रिय होने पर भी मुझे में इतने गुण विद्यमान है।
स्वयं को श्रेष्ठ मानते मानव तथापि अवगुण विद्यमान हैं।।
मेरे गुणगणों को मानव स्वीकारे, ऐसे मेरे शुभभाव है।
बाल्यकाल से 'सूरी कनकनन्दी' मेरे गुणों से लाभान्वित है।।6।।

ओबरी 01.01.2018 रात्रि 08:04

मयूर की आत्मकथा व आत्मव्यथा

(चाल : आत्मशक्ति.......।)

मैं हूँ मयूर पक्षिओं में सुन्दर, मैं हूँ भारत का राष्ट्रीय पक्षी।
मुझ से नृत्य मानव सीखे, जिस का नाम मयूर नृत्य है।।
मेरे अनेक नाम अभिधेय है, मयूर, मोर, केकी व सारंग।
नीलकंठ, बर्हिण, कलाजी, कलापी, शिखण्डी, शिखी, शिव-सुत-वाहन।।1।।

मेरा नाम प्रावृषिक भी है, वर्षा में मैं नाचता-गाने से।
मेरा कंठ नील होने से नीलकंठ, शिर पर मुकुट से शिखण्डी-शिखी है।।
नृत्य मैं करता हूँ पंख फैलाकर, पीहू-पीहू शब्द से गाकर।
मेरे नृत्य को देखने के हेतु, मयूरीनि से मानव तक आतुर।।2।।

वर्ष में एक बार वर्षा के अनन्तर, मेरे बहुरंगी-सुन्दर पंख खिरते हैं।
जिसे संग्रह कर के पिच्छी बनाकर, दिगम्बर जैन साधु धारण करते हैं।।
मेरे पंख में होती अनेक विशेषताएँ, कोमल-हल्का-अभंगुर (निर्लिप्त) है।
धुली व गंदगी को न ग्रहण करते, जिससे साधु जीव-रक्षा करते हैं।।3।।

इन सब उत्तम गुणों के कारण भी, नारायण कृष्ण ने शिर पर धारण किया।
उक्त श्रेष्ठ गुणों से शिक्षा लेने हेतु, मुझे भारत ने राष्ट्रीय पक्षी माना।।
मैं हूँ निरीह भोला-भाला, तथापि कुछ दुष्ट मेरे भारतीय।
मुझे मारकर खा जाते, माँस भी बेचकर कमाते धन।।4।।

ऐसाहि भारत के अधिकतर लोग, कागजी राष्ट्रीयता को मानते हैं।
राष्ट्र विरोधी अनेक काम करके, 'मेरा भारत महान्' भी कहते हैं।।
इन सब कारणों से भारत देश, भ्रष्ट होने से विकसित नहीं है।
दोष दूर से महान् भारत बनावे, अतः 'सूरी कनक' बनाया काव्य है।।5।।

ओबरी 04.01.2018 प्रातः 07:30

(डेचा देव दर्शन से आते समय खेत में 3 मयूरों को देखकर आ. सुवत्सलमती, दुताक्षी, लेखनी, छवि ने कहा कि अभी गुरुदेव होते तो इस दृश्य को देखकर कविता बना देते-ऐसा मैंने आ. श्री को बताया इसके कारण यह कविता बनी।)

दूध की आत्मकथा व आत्मव्यथा

(चाल : आत्मशक्ति.......।)

मैं हूँ दूध पेय में विशेष, स्तन्यधारी से उपज।
स्तन्यपाई मुझे भी पीकर, बनते स्वस्थ व सबल।।
मेरे अनेक नाम होते हैं, पय-क्षीर-व-दुग्ध, गोरस।
अमृत भी मेरा नाम है, हितकर होने से अमृत रस।।(1)

मुझसे उपजे घृत, हत्य, अपर (अन्य) नाम सर्पि-आज्य-हैथङ्गवीन।
घृत सेवन से धी बढ़ने से, मेरा यथार्थ नाम भी घी है।।
मेरा एक रुप 'दही' होता है दही, मंथन से निकले मक्खन है।
इसका अन्य नाम नवनीत है, इससे बनता हैथंङ्गवीन है।।(2)

दही मंथन से निकले छांछ है, जिस के अपरनाम उदश्वित् है।
जिसके अपर नाम तक्र है, मंथित तथा कालशेय है।।
स्तन्यधारियों का श्रेष्ठ आहार हूँ, शिशु के लिए (तो) मैं पूर्ण आहार हूँ।
मुझ से तन-मन से स्वस्थ सबल, रोगप्रतिरोधक शक्ति होती प्रबल।।(3)

स्तन्यपाई की सन्तान हेतु तो, स्व-माता का दूध तो अमृत सम।
मेरे बिना स्तन्यपाई शिशु, नहीं जी सकते स्वस्थ दीर्घ जीवन।।
अभी तो कुछ मनुष्यनी मातायें, स्व-शिशुओं को न कराती दुग्धपान।
कृत्रिम रूप से बोतल से दूध पीलाकर स्व-सौन्दर्य का करती रक्षण।।(4)

इससे सन्तान भी होती रुग्ण-दुर्बल, स्नेह सौहार्द-सेवा-सहयोग रिक्त।
माता-पिता की भी न करते सेवा (शुश्रूषा), बहिष्कार से ले करती हत्या।।
ऐसा ही गाय-भैंसादि के दूध में, करते मिलावट विविध प्रकार।
यूरिया से ले विविध रसायनों का मिश्रण से मुझे करते जहर।।(5)

इससे भी आगे (क्रूर) कृतघ्न मानव, जिससे पाता मेरे सम अमृत।
ऐसी पशुमादाओं को भी क्रूरता से, वधशालाओं में करता निधन/(वध)।।
तो भी कहता है ऐसा मानव, सर्प को दूध पिलाने से उगले विष।
किन्तु (स्वयं) सर्प से भी अधिक हत्यारा, तथापि मानता स्वयं को श्रेष्ठ।।(6)

तीर्थंकर-बुद्ध-ऋषि-मुनि के वंशज, गोपालकृष्ण के देशवासी भी।
ऐसे कुकृत्य करने में नहीं पीच्छे, दूध-घी वाला विश्वगुरु देश भी।।
इन्हें तो चाहिए मुद्राराक्षस मात्र, भौतिक विकास ही है इनका लक्ष्य।
अतः विश्वगुरु देश हो रहा त्रस्त, प्रदूषण-रोग से ले आत्महत्या तक।।(7)
पुनः जन्म लो हो तुम गोपालकृष्ण, हलधरराम तीर्थंकर बुद्ध।
भारतीयों की मृत चेतना जगाओ, इस हेतु 'सूरी कनक' बनाया काव्य।।(8)
ओबरी 07.01.2017 रात्रि 07:52

खेल की आत्मकथा व आत्मव्यथा

(चाल : 1. तुम दिल की......2. सायोनारा.... 3. भातुकली.....।)

खेल मेरा नाम है, मनोरंजन काम है।
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा (स्वार्थ) रिक्त, स्वस्थ सम्पादन काम है।।
पशु-पक्षी से मनुष्य तक भी मुझ से होते प्रेरित।
गर्भस्थ शिशु से प्रारंभ हो जीवन के अंत तक।।(1)
गर्भस्थ शिशु भी हाथ-पैर हिलाकर करते (मेरा) प्रारम्भ।
जन्म के अनन्तर (तो) और भी, मेरे प्रति होता आदर।।
हाथ-पैर हिलाने से प्रारंभ कर, सरकना से बढ़ाते जाते।
घुटनों में चलना-पैदल चलना-ठुमक-ठुमक (चाल) चलते।।(2)
खिलौने-खेलना-दौड़ लगाना-धूली-मिट्टी में क्रीड़ा करना।
लुका-छिपी खेलना पेड़ पे चढ़ना, नदी-ताल-जल में तैरना।।
कबड्डी-गीली डण्डे खेलना, भँऊरा-गेन्द से क्रीड़ा करना।
कुश्ती-मल्ल-खम्बा चढ़ना, पर्वत-सिन्धु पार करना।।(3)
स्वयंवर से ओलम्पिक तक मेरा ही विभिन्न रूप है।
ऐसा ही मनुष्येत्तर (मानवेतर) प्राणिओं में होते मेरे नाना रुप है।।
मुझ से तन-मन स्वस्थ होते, प्रेम-संगठन सहयोग बढ़ते।
जीवन के अन्य क्षेत्र में भी इन (सब) गुणों से प्रेरित होते।।(4)

पशु-पक्षी व सामान्य मानव से महापुरुष तक मुझे अपनाते।
राम-कृष्ण से तीर्थंकर बालक तक मुझे प्रेम से अपनाते।।
स्वर्ग निवासी मुझे अधिक चाहते, अतः उनके नाम देव हैं।
समुद्र-पर्वत-नदी-सरोवर, नन्दनवन में क्रीड़ा करते।।(5)

तथापि मानव मेरे उज्ज्वल रूप को, करते हैं कलंकित।
ग्रीक थियटर से लेकर, अभी तक विभिन्न क्रीड़ा तक।।
ग्रीक में दासों को परस्पर लड़ाते थें या क्रूर पशु-पक्षी के साथ।
ऐसी क्रूर क्रीड़ा में लाखों दास, पशु-पक्षिओं का हुआ संहार।।(6)

ऐसा ही मुर्गा-मुर्गा लड़ाते तथाहि बैल-सांड आदि के साथ।
परस्पर (को) लड़ाते क्रूर मानव या; स्वयं-स्वयं के साथ।।
मृगया या शिकार को भी क्रीड़ा रूप में (क्रूर) मानव खेलते हैं।
बास्किंग आदि खेल में तो परस्पर को हानि पहुँचाते हैं।।(7)

क्रिकेट आदि खेल को भी अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा में खेलते हैं।
उसमें भी आर्थिक भ्रष्टाचार से वैर-विरोध-हिंसादि करते हैं।।
फैशन-व्यसन-अश्लीलता से, पर्यावरण प्रदूषण करते हैं।
नशीली वस्तु सेवन से सट्टा व वेश्यागमनादि करते हैं।।(8)

ऐसे खेल-खिलाड़ियों के लिए भी मानव पागल होते हैं।
उन्हें महान् व आदर्श मानकर, (उनका) अन्धानुकरण करते हैं।।
उन्हें अधिक सम्मान व पुरस्कार धन आदि भी देते हैं।
उनके गलत विज्ञापन को भी सही मानकर दिवाने बनते हैं।।(9)

ऐसे पागलपन विश्वगुरु भारत में अधिकतर पाये जाते हैं।
धन-जन (व) मान-सम्मान-समय व स्वास्थ्य को नष्ट करते हैं।।
इससे मुझे पीड़ा होती कैसे ऐसे अधम मानव है?
मेरा महान् पावन स्वरूप को भी कर रहें अपावन है।।(10)

ऐसा तो पशु-पक्षी भी मेरा स्वरूप को न करते विकृत है।
मेरा पावन रूप ही मानव स्वीकारे इस हेतु 'कनक' का आशीष है।।(11)

ओबरी 08.01.2018 रात्रि : 08:30

ज्यादा बैठने से कैंसर भी हो सकता है?

एक शोध से पता चला है कि यदि आप ज्यादा लंबे समय तक बैठे रहते हैं तो ऐसा करना आपके लिए धूम्रपान करने से कम खतरनाक नहीं है। नौ हजार लोगों पर किए गए शोध के बाद यह बात सामने आई है कि एक घंटे से ज्यादा देर तक बैठने के बाद शरीर के मैटाबॉलिज्म में भी कमी आती है, जिससे कॉलेस्ट्राल का स्तर नियंत्रण से बाहर हो जाता है और हार्ट और कैंसर की संभावना कई फीसदी बढ़ जाती है।

घरेलू कामकाज से जिम जैसा वर्कआउट

सेहत विज्ञानियों की मानें तो जो महिलाएँ अपना घरेलू कामकाज खुद करती हैं, उन्हें जिम न जाने या वर्कआउट न करने के लिए अपराध बोध महसूस नहीं करना चाहिए। 17 देशों के 1, 30,000 अमीर और गरीब तबके के लोंगों पर रिसर्च करने के बाद इन शोधकर्ताओं ने पाया कि घरेलू कामकाज जैसे बागवानी, कपड़े धोना या साफ-सफाई करना भी जिम जाने जैसा ही असरकारक वर्कआउट है। इन शोधकर्ताओं का कहना है कि दुनिया में होने वाली 12 में से 1 मौत को कम से कम 5 साल तक टाला जा सकता है, अगर कोई हर रोज कम से कम 30 मिनट की फिजिकल एक्टीवीटी में संलग्न रहे। अगर कोई व्यक्ति ज्यादा एक्टिव है और हफ्ते में 750 मिनट की फिजिकल एक्टीविटी में संलग्न रहता है, तो वह अपनी आयु और ज्यादा बढ़ा सकता है।

भुलक्कड़ बना सकता थोड़ा सा भी मोटापा

कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के नए शोध के अनुसार मोटापे से न केवल इंसान आलसी हो जाता है, बल्कि उसकी याद रखने की क्षमता में भी कमी आती है। वैज्ञानिकों के अनुसार अल्जाइमर जैसी बीमारी के लिए भी मोटापा सबसे बड़ा कारण है। मोटापा आने के साथ ही हाई ब्लड प्रेशर और इंसुलिन की समस्या बढ़ जाती है। इसकी वजह से खाने की आदतों में भी फर्क पड़ता है।

बार्सिलोना ने लिवरपूल के ब्राजीलियन फुटबॉलर फिलिप कॉटिन्हो को पिछले करार से 16 गुना ज्यादा राशि दी

तीसरे सबसे महंगे फुटबॉलर बने कॉटिन्हो; चार साल पहले लिवरपूल ने 73 करोड़ में किया था करार, अब बार्सिलोना ने दिए 1218 करोड़

ब्राजील के फिलिप कॉटिन्हो की बार्सिलोना से खेलने की इच्छा आखिरकार पूरी हो गई है। स्पेनिश क्लब बार्सिलोना ने उनसे 1218 करोड़ रुपए का कॉन्ट्रेक्ट किया है। 25 साल के अटैकिंग मिडफील्डर अब साढ़े पाँच साल तक बार्सिलोना से खेलते नजर आएंगे। बार्सिलोना ने 3044 करोड़ के रिलीज क्लॉज के तहत कॉटिन्हो से कॉन्ट्रेक्ट किया है। यानी, अगर कॉटिन्हो साढ़े पाँच साल से पहले बार्सिलोना छोड़ देते हैं तो उन्हें स्पेनिश क्लब को इतने पैसे देने होंगे। या फिर जो भी क्लब उनसे करार करेगा, वह बार्सिलोना को यह राशि देगा।

कॉटिन्हो पिछले तीन साल से ब्रिटिश क्लब लिवरपूल के साथ थे। अब नए कॉन्ट्रेक्ट के साथ ही वे दुनिया के तीसरे सबसे महंगे फुटबॉलर बन गए हैं। इससे पहले, नेमार को पेरिस सेंट जर्मेन ने बार्सिलोना से 1689 करोड़ और किलियन एमबापे को पेरिस सेंट जर्मेन ने मोनाको से 1411 करोड़ रुपए में अपने साथ शामिल किया था।

कॉटिन्हो को जनवरी, 2013 में लिवरपूल ने इंटर मिलान से 73 करोड़ रुपए में खरीदा था। पहले सीजन में वे सिर्फ 3 गोल कर सके थे। इसके बाद उनका प्रदर्शन हर साल बेहतर होता गया। इन पाँच सालों में वे 54 क्लब गोल कर चुके हैं। कॉटिन्हो ने इस सीजन में अब तक 18 मैचों में 12 गोल किए हैं। पिछले 7 मैचों में वे 6 गोल कर चुके हैं।

यू गाँव नाम की कंपनी ने 17 खेलों की लोकप्रियता पर किया सर्वे, सबसे अधिक लोगों ने गोल्फ को बोरिंग माना

क्रिकेट, गोल्फ और अमेरिकन फुटबॉल ब्रिटेन के सबसे बोरिंग खेल; एथलेटिक्स, टेनिस, फुटबॉल माने गए सबसे रोचक: सर्वे

ब्रिटेन को क्रिकेट का जनक माना जाता है। लेकिन, वहाँ के निवासियों के लिए इसकी गिनती अब सबसे बोरिंग खेलों की सूची में टॉप-3 में होती है। पोलिंग कंपनी यू गाँव ने वहाँ के लोगों से 17 खेलों पर राय ली। इसमें बोरिंग, बहुत बोरिंग,

न बोरिंग न रोचक और रोचक/बहुत रोचक के विकल्प दिए गए थे। क्रिकेट को 58 फीसदी लोगों ने बोरिंग या बहुत बोरिंग की श्रेणी में रखा।

क्रिकेट से ज्यादा बोरिंग खेल सिर्फ अमेरिकन फुटबॉल और गोल्फ को माना गया। गोल्फ को 70 फीसदी लोगों ने और अमेरिकन फुटबॉल को 59 फीसदी लोगों ने बोरिंग या बहुत बोरिंग बताया। 17 फीसदी लोगों ने क्रिकेट को न तो बोरिंग और न ही रोचक खेल की श्रेणी में रखा। वहीं, 22 फीसदी लोगों ने क्रिकेट को काफी रोचक बताया। 17 में से केवल पाँच खेल ऐसे थे जिसे लोगों ने मुख्य तौर पर रोचक या बहुत रोचक की श्रेणी में रखा। इसमें सबसे आगे एथलेटिक्स रहा। एथलेटिक्सको 47 प्रतिशत लोगों ने रोचक या बहुत रोचक बताया। टेनिस और फुॅटबाल को 43-43 फीसदी लोगों ने, रबी को 41 फीसदी लोगों ने और जिम्नास्टिक को 36 फीसदी लोगों ने रोचक या बहुत रोचक बताया। हालांकि, इन खेलों को भी बोरिंग कहने वाले लोगों की कमी नहीं दिखी। फुटबॉल को 40 फीसदी लोगों ने तो जिम्नास्टिक को 35 फीसदी लोगों ने बहुत बोरिंग खेल बताया। एथलेटिक्स को सबसे कम 28 फीसदी लोगों ने बोरिंग कहा। टेनिस को 33 प्रतिशत ने बोरिंग की श्रेणी में रखा।

बोर्ड के अधिकारी कोहली को जितना पूजते हैं, उतना भारतीय कैबिनेट के सदस्य प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को नहीं पूजते होंगे

इतिहासकार और सीओए के पूर्व सदस्य रामचंद्र गुहा ने बीसीसीआई और भारतीय कप्तान पर किया बड़ा हमला, आर्टिकल में लगाए आरोप

इतिहासकार रामचन्द्र गुहा ने भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के अधिकारियों और टीम इंडिया के कप्तान विराट कोहली पर बड़ा हमला बोला है। उन्होंने कहा है कि बोर्ड के अधिकारी विराट कोहली को जितना पूजते हैं, उतना तो केन्द्र सरकार में कैबिनेट के सदस्य प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को भी नहीं पूजते होंगे। गुहा ने बीसीसीआई को विराट कोहली के अहंकार के आगे समर्पण कर चुकी संस्था बताया। रामचंद्र गुहा देश में क्रिकेट के संचालन के लिए सुप्रीम कोर्ट द्वारा गठित प्रशासकों की समिति (सीओए) के सदस्य भी थे। उन्होंने भारतीय क्रिकेट में सुपर स्टार कल्चर का हवाला देकर अपना पद चार महीने में ही छोड़ दिया था। गुहा ने ये सारे आरोप एक आर्टिकल लिख कर लगाए हैं।

नट (एक्टर) नटी (एक्ट्रेस) की
आत्मकथा व आत्मव्यथा

(भारतीयों के भाषा ज्ञान से लेकर राष्ट्रीयता का खोखलनापन का दिग्दर्शन)

(चाल : आत्मशक्ति......)

मैं हूँ नट/(नटी) सब से विचित्र, सब से बहुरूपीया मेरा काम।
विभिन्न स्वांग के माध्यम से, अभिनय द्वारा धनार्जन।।
राजा-रंक से लेकर साहुकार अपराधी से ले न्यायाधीश (मेरा) स्वांग।
अन्य के मनोरंजन हेतु चित्र विचित्र चारित्रनायक का स्वांग।।
हाव-भाव-स्वांग के द्वारा मैं अभिनय करता हूँ पात्रानुसार।
जिस से दर्शक दृश्य-श्राव्यादि के द्वारा मनोरंजन करते प्रचुर।।1।।

नाटक, सिनेमा, ओपनथियेटर, ड्रामा, नुक्कड़, नृत्यादि में करता काम।
धार्मिक से लेकर ऐतिहासिक व काल्पनिक पात्र का भी करता (हूँ) स्वांग।।
महानायक से खलनायक तक का मैं करता हूँ अभिनय।
मेरे अभिनय से कुछ सुधी-गुणग्राही दर्शक पाते हैं शिक्षा अनेक।।2।।

कालीदास से ले बाणभट्ट शेक्सपीयर से लेकर रवीन्द्र (कविन्द्र) तक।
हुए हैं अनेक नाटक लेखक जिससे मिली शिक्षायें अनेक।।
रामलीला से ले कृष्णलीला व राजा हरिश्चन्द्र जोहनस अर्क (बर्ग) तक।
अनेक वैज्ञानिक गल्प आधारित नाटकों से मिले ज्ञान अनेक।।3।।

ऐसे नाटकों में अभिनय करने से मुझे भी गौरव होता है।
मेरे अभिनय से अन्य को शिक्षा मिले मेरा भी भाव अच्छा होता है।।
किन्तु हाय! अभी भारत देश में उक्त भाव व्यवहार नहीं हैं।
अश्लील-फूहड़ हिंसक-सत्य-तथ्यहीन सिनेमा-नाटक आदि होते हैं।।4।।

मेरा रूप भी होता तदनुकूल, जो नीति-नियम से रहित हैं।
केवल धन व नाम कमाने हेतु सभी फैशन-व्यसनों से सहित हैं।।
इससे भी अधिक मुझे पीड़ा होती, भारतीयों के भाव-व्यवहार से।
मेरे रियल लाइफ को न जानते, केवल (रोल) सीरियल के अन्धभक्त हैं।।5।।

मेरा अन्तरंग व मेरी समस्या नहीं जानते हैं भारतीय।
मेरे भ्रष्टाचार-रोग, तनाव, अश्लीलता से लेकर आत्महत्या तक।।
मुझे तो 'हीरो' व 'नायक' मानते, तथाहि ऐसा ही कहते-लिखते भी।।
ऐसी उपाधि तो महापुरुषों की होती, मैं तो इसके अयोग्य भी।।6।।

मुझे तो सर्वत्र महान् मानते समाज-राष्ट्र-राजनीति से धर्मतक।
मेरा गुण गाते अन्धभक्त बनते, भाषा से ले खान-पान तक।।
प्रजा से लेकर राजा (देश) तक, मुझे सम्मान व पुरस्कार देते।
मुझसे हर प्रकार विज्ञापन कराके, स्वयं की अयोग्यता प्रदर्शन करते।।7।।

मुझसे महान् जो साधु-साध्वी, समाज-सेवक से ले वैज्ञानिक तक।
उनका होता अनादर व शोषण, राष्ट्र के अन्नदाता कृषक तक।।
इससे भारतीयों के भाषाज्ञान से ले राष्ट्रीयता का खोखलापन होता ज्ञात।
मेरा पीड़ा को 'सूरी कनक' ने स्वकाव्य द्वारा किया चित्रित।।8।।

ओबरी 02.01.2018 रात्रि : 07:47

अभिनय

अभिनय- दूसरे व्यक्तियों के भाषण तथा चेष्टा का कुछ काल के लिए अनुकरण करना, जैसे नाटकों आदि में होता है, स्वांग, नकल; नाटकों का खेल।

अभिनेय- जो अभिनय के योग्य हो, अभिनय का विषय वह पात्र या रचना जिसका अभिनय करना है (नाटक)

अभिनीत- निकट लाया हुआ; सुसज्जित, अलंकृत; जिसका अभिनय हुआ हो, खेला हुआ (नाटक)

अभिनेता/अभिनेत्री- अभिनय करने या स्वांग दिखाने वाला पुरुष, नट (एक्टर)/स्त्री, नटी (एक्ट्रेस) - मधुरिमा, दैनिक भास्कर

विवाद-

पद्मावती की रिलीज रुकी, सेंसर बोर्ड का 'सेंस' जस का तस, प्रसून जोशी भी विवादों से घिरे रहे

- फिल्म 'पद्मावती' को एक कॉलम में पूरा न होने की वजह से लौटा दिया गया।

फिल्म को लेकर देश में काफी हंगामा भी हुआ।

- सेंसर बोर्ड चीफ के तौर पर प्रसून जोशी के कार्यकाल में भी हर महीने में कोई विवाद हुआ। फिल्म 'एस दुर्गा' का सर्टिफिकेट वापस ले लिया। नाम पर आपत्ति थी।
- पंजाबी फिल्म 'तूफान' को हिंसा की दलील देकर सर्टिफिकेट नहीं दिया
- तमिल फिल्म 'मर्सेल' के तेलुगु वर्जन में जीएसटी और नोटबंदी की आलोचना वाले सीन को हटाने या म्यूट करने को कहा।

अभिनेता का मंच नहीं रहा रंगकर्म

रंगमंच को जीवित रखने के लिए अक्सर पैसे की कमी का रोना रोया जाता है, लेकिन मेरा मानना है कि आर्थिक साधन पर्याप्त हैं। भारत सरकार का संस्कृति मंत्रालय रंगकर्म के नाम पर अलग-अलग मद में खूब पैसा बाँट रहा है। निर्माण, भवन, उपकरण के लिए अनुदान की व्यवस्था है। प्रोडक्शन ग्रांट व्यक्ति या संस्था के नाम पर लिया जा सकता है। इसके अलावा सैलरी ग्रांट, फैलोशिप, स्कॉलरशिप आदि भी दिए जाते हैं। इतना सब होने के बाद भी रंगकर्म में पर्याप्त प्रगति नहीं हो रही हैं, क्योंकि पैसे का गलत उपयोग हो रहा है। अनेक मक्कार लोग सरकारी मदद लेकर भी काम नहीं कर रहे हैं। रंगमंच को दोबारा जनप्रिय बनाने निष्ठावान रंगकर्मियों को पहल करनी होगी।

असल में ज्यादातर लोग शैकिया रंगमंच करते रहे हैं। हिन्दी ही नहीं, बंगाली या मराठी रंगमंच में भी यही स्थिति है। वहाँ भी अधिकतर नौकरीपेशा लोग रंगकर्म से जुड़े हैं, लेकिन वहाँ नाटक देखने की सुदृढ़ परंपरा है, इसीलिए रंगमंच वहाँ अब भी चल रहे हैं। पहले की तुलना में आज अगर आम आदमी रंगमंच से दूर हो रहा है, तो उसके कुछ कारण भी हैं। दरअसल, आज का रंगमंच डिजाइनर, निर्देशक का माध्यम बनकर रह गया है, अभिनेता के लिए जगह नहीं बची है। अभिनेता के पास कैरेक्टर (चरित्र) के रूप में आने का, व्यक्त करने का मौका पहले की तरह, अब नहीं रहा है। टेक्नोलॉजी के बीच कैरेक्टर का असर कम हो गया है, संप्रेषण में अंतर आ गया है। तकनीक की चकाचौंध में कैरेक्टर दिखाई ही नहीं देता है, वह अनेक आवरण में ढंकता जा रहा है। रंगमंच तो जीवंत माध्यम है और यदि हमें इसे जिंदा

रखना है, तो उसमें दूसरी चीजों को लादने से बचना होगा।

वर्तमान में भ्रष्टाचार, महंगाई, सांप्रदायिकता, राजनीतिक छल-फरेब का जोर है, तो इन मसलों पर आधारित नाटक भी इन दिनों ज्यादा खेले जा रहे हैं। आज हिन्दुस्तान में भ्रष्टाचार सबसे ज्वलंत मुद्दा हैं। इस शाश्वत मसले पर अनेक नाटक खेले गए हैं। सांप्रदायिकता पर आधारित नाटक जिन लाहौर नहीं वेख्या भी नए रूप में खेला जा रहा है। **(अमित स्वप्निल से बातचीत पर आधारित)**

नीलसन की रिपोर्ट- पिछले 7 सालों में 60 प्रतिशत बढ़ा पुरुष ब्यूटी प्रोडक्ट की बिक्री

महिलाओं को आकर्षित करने के लिए नहीं बल्कि खुद को आकर्षक बनाने में भारतीय पुरुष हर साल खर्च कर रहे 5,000 करोड़ रुपए

न्यूयार्क। भारतीय पुरुष हर साल अपने लुक को संवारने और ग्रूमिंग के लिए ही 5 हजार करोड़ रुपए तक खर्च कर दे रहे हैं। इसके पीछे उनका मकसद किसी को आकर्षित करना नहीं, बल्कि खुद को प्रजेंटेबल लुक देने का रहता है। ये बात नीलसन के सर्वे में सामने आई है। इस रिपोर्ट के मुताबिक-कुछ समय पहले तक मेल ग्रूमिंग को सीधे तौर पर महिलाओं को आकर्षित करने से जोड़कर देखा जाता था, लेकिन अब ये ट्रेंड बदला है।

आदिब्रह्मा भ. आदिनाथ निर्वाणोत्सव की उपलब्धि

बागड़ अञ्चल के सांस्कृतिक व धार्मिक ग्राम ओबरी में प्रवासरत स्वाध्याय तपस्वी निस्पृह सन्तप्रवर आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव ससंघ सान्धिय में भ. आदिनाथ निर्वाणोत्सव आध्यात्मिक नवजागृति का पर्व बना। गत पन्द्रह दिवस से चल रहे भक्तामर महामण्डल विधानादि अनुष्ठान के अन्तिम दिन आचार्यश्री ने मन्दिर के सभागृह में उपस्थित श्रद्धालुभक्त शिष्यों को आध्यात्मिक प्रबोधन देते हुए कहा कि आप सभी यह बाह्य अनुष्ठान किसलिए कर रहे हैं? तो सभी श्रोताओं ने एक स्वर में उत्तर दिया कि यह

सब हम स्व-आत्मा के लिए कर रहे हैं। आचार्य श्री ने श्रावकों के कर्त्तव्य का बोध कराते हुए शुभ भावों की महत्ता का प्रतिपादन किया -

जब चिन्तो, सहसाफल, लक्खा फल गमणे।
कोटाकोटि अनन्त फल, जब जिनवर दिट्ठे।।

यह सब भावों (विचारों) से सम्भव होता है। इस सन्दर्भ में गुरु देव ने भ. आदिनाथ के पूर्वभवों में दिए गए दान व अनुमोदना से होने वाले आत्मोत्थान के उदाहरण से बताया कि छोटा सा भाव-दान-सहयोग परोपकार या पुण्य आदि भविष्य में विशाल रूप में प्रतिफलित होते हैं। बरगद के बीज में निहित शक्ति का दृष्टान्त देते हुए आत्मा की अनन्त शक्ति का बोध कराया। ज्ञानदान व परोपकार आदि गुणों के स्वानुभव से आचार्य श्रीसंघ की महत्ती वैश्विक प्रभावना का बखान करते हुए गुरुदेव ने कहा कि मेरे समक्ष माँ सरस्वती चलती है अर्थात् मैं सतत ज्ञान-आराधना करता हूँ एवं पीछे धन लक्ष्मी चलती है अर्थात् मेरे अयाचक व निस्पृहभाव के कारण देश-विदेश के जैन-अजैन भक्त व शिष्य स्वेच्छा से दान देते हैं। उपरोक्त सभी उपलब्धियों का श्रेय आचार्यश्री ने बागड़-मेवाड़ अञ्चल के भक्त शिष्यों के भक्ति आहारदान शास्त्रदान सरलता, मधुरता आदि गुणों का अनुमोदन करते हुए कहा-

झुकती है दुनिया, झुकाने वाला चाहिए।
शक्ति सुप्त हैं, जागृत करना चाहिए।।

गुरुदेव की सुशिष्या कवयित्री विजयलक्ष्मी कमलकुमार गोदावत ने अपने स्व-अनुभव व उपलब्धियों का बखान किया। इस सुअवसर में आचार्य श्री सृजित कृति ''जैन शासन गीताञ्जली'' धारा ...72, ग्रंथांक-285 का विमोचन ओबरी ग्राम के श्रावक-श्राविकाओं के शुभ हस्ते हुआ।

शुभकामना सह-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

तू (मैं) कौन हूँ!?

(तू (मैं) की संसार से मुक्ति की अवस्थायें)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : चन्दा है तू....)

पुण्य है तू पाप है तू...पुण्य-पाप रहित मुक्त है तू...
द्रव्य है तू गुण है तू...दोनों से सहित जीव है तू...
उत्पाद तू व्यय भी तू... ध्रौव्य सहित सत् है तू...
ज्ञान है तू ज्ञाता है तू... दोनों से सहित चैतन्य तू...
कर्त्ता है तू भोक्ता है तू... दोनों से सहित आनन्द तू...
अस्ति भी तू नास्ति भी तू... अस्ति-नास्ति परे अव्यक्त तू...
अनादि तू अनन्त भी तू... स्वयंभू सनातन-सम्पूर्ण तू...
तेरा श्रद्धान ही आत्मविश्वास...तेरा ज्ञान ही आत्मविज्ञान...
तेरा कल्याण ही आत्मकल्याण... (तेरी) उपलब्धि ही (है) परिनिर्वाण...
तेरा ध्यान ही आत्म का ध्यान... तेरा सम्मान ही आत्मसम्मान...
तेरा स्वाध्याय ही परम-स्वाध्याय/(तप)...तव प्राप्ति हेतु त्याग ही त्याग...
तेरे उपवेशन से होता उपवास... तव प्राप्ति ही परम लक्ष्य...
तेरा विकास ही आत्मविकास.. तेरे पतन से सर्वविनाश...
तुझे ही कहते 'सोऽहं' व 'अहं...' 'निज'-'अपना'-'आप'-'आत्मा' व 'स्वयँ'
तुझे ही कहते 'मैं' 'I' व 'खुद...' तुझे ही कहते 'स्व' या 'स्वभाव'
तेरे अभाव से उक्त मेरे अभाव.. 'अहंकार' 'ममकार' भी नहीं सम्भव...
तेरे अभाव से मम न कोई अस्तित्त्व...संसार से लेकर मोक्ष तक...
तुझे न जानते अज्ञानी-मोही..जड शरीर को मानते 'मैं' ही 'मैं'...
उसके सम्बन्ध से मानते 'मेरा'...इससे परे परको माने पराया...
ये ही अन्धविश्वास-कुज्ञान...इससे युक्त सभी धर्म कुधर्म...
'मिथ्यात्व'-'कुदृष्टि' 'माया' या 'मोह'..'अविद्या'-'कुविद्या'-'मिथ्या'-'विभाव'..
तेरे हेतु भी चक्री बने साधु...साधना करते तेरी प्राप्ति हेतु...
तेरे द्वारा ही तुझे में तुझे पाऊँ... 'तू' ही 'मैं' हूँ 'कनक' अन्य 'मैं' नहीं

मेरा विश्व रूप

(मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय) (मेरी अनन्त भूत-वर्तमान तथा अनन्त भविष्यत का स्वरूप)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : उडिया-बंगला राग...कोथाये स्वर्ग, कोथाये नर्क के बोले ते बहुदूर-रवीन्द्र संगीत....)

कहाँ भी मैं नहीं...मुझमें ही सही...द्रव्य-गुण-पर्याय मुझमें स्थित।
आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्ष... मेरे सुख-दुःखादि मुझमें स्थित।।
'सद् द्रव्य लक्षणं' होने से मैं सत्य, मैं हूँ जीव द्रव्य स्वयंभू-शाश्वत।
जबसे है विश्व तबसे मैं स्थित, अजर-अमर-नित्य-अमृत।।
''गुण-पर्ययवत् द्रव्यं'' होने से, अनन्त गुण-पर्याय मुझमें स्थित।
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्, भले इस हेतु अन्य द्रव्य निमित्त।।(1)
अनादि कालीन कर्म बन्ध से, अभी मैं अशुद्ध रूप में स्थित।
गुण-पर्याय आदि अभी अशुद्ध, अशुद्धता भी मेरी मुझमें स्थित।।
राग-द्वेष व मोह के कारण ही, मेरे आत्म प्रदेश में होते कम्पन्न।
जिससे होता है कर्मों का आस्त्रव, आस्त्रव से होता कर्मों का बन्ध।।(2)
इससे ही मेरे जन्म व मरण, चौरासी लक्ष्य योनियों में किया भ्रमण।
पंच परिवर्तन रूपी चतुर्गति में, विश्व के मध्य में किया भ्रमण।।
पंचलब्धि देव-शास्त्र-गुरु पाकर, मेरे गुण मुझमें हो रहे उजागर।
''तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'' पाकर, मेरे अनन्त गुणों का करुँ श्रद्धान।।(3)
इससे मेरे ज्ञान हुए सम्यक्, मतिश्रुत दोनों हुए सम्यक्।
जिससे विश्व का हो रहा सही ज्ञान, अतः मम ज्ञान वीतराग विज्ञान।।
इससे हुआ स्व-पर भेद विज्ञान, मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनन्द घन।
मुझसे परे सभी से मैं हूँ भिन्न, 'अहंकार' 'ममकार' हो रहे क्षीण।।(4)
यहाँ से प्रारम्भ मम श्रमणावस्था, स्व-उपलब्धि हेतु (स्वयं में) करुँ पुरुषार्थ।
ज्ञान-ध्यान-तप रूप करुँ प्रवृत्ति, समता-शान्ति व वैराग्य वृत्ति।।

अतः मेरी बाह्य प्रवृत्ति हो रही क्षीण, ख्याति-पूजा-लाभ में न लगे मन।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश हो रहे दूर, आकर्षण-विकर्षण द्वन्द भी चूर।।(5)
अपना-पराया भेद-भाव से परे, स्व-पर-विश्वकल्याण भावना भरे।
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थभाव, उदार-सहिष्णु व पावन भाव।।
यह मोक्षमार्ग मुझमें प्रारम्भ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।
मम मोक्षमार्ग में मम है गमन, मेरे द्वारा (ही) मुझमें परिणमन।।(6)
इससे मम हो रहे संवर-निर्जरा, आत्मविकास करुँगा श्रेणी आरोहन द्वारा।
परम विशुद्ध भाव से करूँगा कर्म क्षय, जिससे पाऊँगा सुख अनन्त अक्षय।।
मेरे सद्भाव से मम यह सम्भव, मेरे अभाव से यह नहीं सम्भव।
अतएव मैं मेरा कर्त्ता व भोक्ता, 'कनक' अन्य का न कर्त्ता-भोक्ता।।(7)